स्वामी रामतीर्थ

के

लेख व उपदेश

सोलहवाँ भाग

(संशोधित संस्करण)

व्यावहारिक वेदान्त

प्रकाशक

रामतीर्थ प्रतिष्ठान

(रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग)

लखनऊ

प्रथमावृत्ति] सन् १९५२ [मूल्य १।।।)

दो शब्द

राम की वाणी अमर है। उसमें आत्मज्ञान का अथाह सागर भरा हुआ है। जो कोई निश्चल चित्त से उसमें अवगाहन करेगा, वह अपरोक्ष ज्ञान से वंचित नहीं रह सकता। रामतीर्थ प्रतिष्ठान निरन्तर उनकी वाणी को जिज्ञासुओं के पास पहुँचाने में प्रयत्नशील रहता है। सबसे पहले सन् १९१९ में राम की वाणी श्री 'रामतीर्थ ग्रन्थावली' के नाम से २८ भागों में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ था। तदुपरान्त सन् १९२९ में यही वाणी स्वामी रामतीर्थ के लेख व उपदेश के नाम से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुई। अब सन् १९५० में इसका तृतीय संस्करण स्वामी राम के समग्र ग्रन्थ के नाम से १६ भागों में प्रारम्भ हुआ है। आज 'व्यावहारिक वेदान्त' के नाम से इस ग्रन्थावली का यह सत्रहवाँ भाग पाठकों के हाथों में सौंपते हुए हमें परम हर्ष हो रहा है।

सम्प्रति हमारा सभी राम-प्रेमियों से नम्र निवेदन है कि वे पहले ही के समान दूने उत्साह से राम की इस अमर वाणी के प्रचार में हमारा हाथ बटायें।

हरि ॐ

शिवरात्रि
संवत् २००८

रामेश्वर सहाय सिंह,
मंत्री रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ

विषय-सूची

१

उन्नति का मार्ग

[ता० २४ सितम्बर सन् १९०९ को दिया हुआ व्याख्यान]

व्याख्यान आरम्भ करने से पहले राम आपको यह बताना चाहता है कि आत्म-पूजा (सेल्फ़-रेस्पेक्ट, Self-respect) और आत्म-सम्मान इन शब्दों के क्या अर्थ हैं। लोगों ने इनको ग़लत समझ रक्खा है। यदि आप आत्म (सेल्फ़ Self) के अर्थ परिच्छिन्नात्मा समझते हैं और उसको केवल अपना शरीर मानते हैं, तो आत्म-पूजा (सेल्फ़-रेस्पेक्ट) के अर्थ तुच्छ अहंकार और अभिमान के होंगे, जो पाप है। यदि सेल्फ़ का तात्पर्य ईश्वर का स्वरूप समझा जाय, तो सेल्फ़-रेस्पेक्ट से बढ़कर कोई पुण्य

ही नहीं हो सकता। राम आप लोगों से चाहता है कि व्याख्यान आरम्भ होने से पहले आप अपने विचारों को एकत्र कीजिए, अर्थात् एकाग्रता से काम लीजिए, और खूब ध्यान से सुनिए। आप भगवत्-स्वरूप हैं, और जब कि आप अनन्त स्वरूप हैं, तो आपमें परिच्छिन्न सांसारिक विचारों का होना भी ग़लत है।

एक राजा का पुत्र किसी बुरे काम में प्रवृत्त है। अपने नौकरों में बैठता है, अथवा किसी को गन्दी गालियाँ देता है, और उससे यह कहा जाता है कि तुम क्या कर रहे हो, तुमको यह शोभा नहीं देता, तुम राजा के पुत्र होकर इन नीच लोगों में बैठते हो और ऐसी गालियाँ अपनी जिह्वा पर लाते हो; वह तत्काल अपनी असली अवस्था को जानकर अपने कर्म पर लज्जित होता है। इसी प्रकार आप अपने स्वरूप का ध्यान कीजिए। आपका स्वरूप तो परमेश्वर है, वह स्वरूप तो त्रिलोकी को आनंद देनेवाला है, सूर्य को सोना और चंद्रमा को चाँदी देनेवाला है; ठीक उस बालक की तरह अपने कर्मों पर लज्जित होइए, और सांसारिक वस्तुओं में अपने को इतना आसक्त न होने दीजिए। अपने स्वरूप को जानिए और समझिए। देखो, आपको गायत्री मंत्र क्या सिखाता है? राम उस मंत्र को नहीं पढ़ता, केवल उस का आशय (उद्देश्य) बतलायेगा। वह यह है, मेरी बुद्धि प्रकाशित हो, क्योंकि वह जो सूर्य, चंद्र और तारों को प्रकाश देनेवाला है, वह मेरा आत्मा है। जब यह बात है, तो राम कहता है कि वे लोग जो अभेदवादी हैं, वे अपनी अभेद-दृष्टि को सम्मुख रखकर, और वे जो भेदवादी हैं, वे अपनी भेददृष्टि को धारण करके, उस ज्योतिःस्वरूप का ध्यान करें। वह ध्यान क्या है? वह यह है कि वह जो बाह्य प्रकाश का स्रोत है और जो भीतरी ज्ञान-

ज्योति का स्रोत है, वह मेरे हृदय में है, मेरे हृदय में वह दीपक जल रहा है, मेरे हृदय में वह ज्योति प्रकाशमान् है।

अब राम आज के विषय पर आता है। वह विषय है:—

उन्नति का मार्ग

यह विषय अत्यन्त विस्तृत है। इसलिये इसमें से केवल एकआध आवश्यक भागों को राम लेगा। आम तौर से लोग यह प्रश्न करते हैं कि ये उन्नति-उन्नति पुकारनेवाले लोग कहाँ से आ गये? अरे भाई! अपने घर रहने और आमोद-प्रमोद से जीवन व्यतीत करने में सुख है, या उन्नति-उन्नति की सिर-पीड़ा मोल लेने में? लोगों की जिह्वा पर यही है कि हमको यहीं रहने दो, हम आगे नहीं जाना चाहते, और इसी पर वे आचरण भी करते हैं, और उनका कथन है:—

बक़दरे-हरसकूँ राहत बुवद बनिगर तफ़ावत रा;
दवीदन रफ्तन एस्तादन निशस्तन ख़ुफ्तनो - मुर्दन।

अर्थ—इस कहावत के प्रमाण में कि प्रत्येक स्थिति (ठहराव) में कितना आनन्द होता है, तुम्हें दौड़ने, चलने, खड़े होने, बैठने, सोने और मरने की स्थिति के अन्तर पर विचार करना उचित है।

किंतु यह आनंद क्या वस्तु है? यह तो क्षण-भंगुर है। यह कोई अवस्था स्थिर नहीं रह सकती। कभी तो ख़ुफ़्तन (स्वप्न) की की दशा ख़त्म होगी, फिर उसके बाद राहत (आराम) का अन्त है। सबसे अधिक आनन्द तो तब होगा कि जब ऐसी मृत्यु आवे कि फिर मरने की नौबत न आवे। ऐसे आलस्योपासक महात्माओं को राम एक प्रकृति का नियम बताता है। विकासवाद का इतिहास (History of Evolution) हमको यह उपदेश देता है कि "move or die" आगे बढ़ो, या मरो। जो कोई आगे

बढ़ने से इनकार करेगा, वह कुचला जायगा। इसके सिवाय और कोई वश या इलाज नहीं है। संसार में जितने प्राणी हैं, सबकी दशाओं पर ध्यान करने से यही नियम मालूम होता है कि बढ़ो। जड़, चेतन, वनस्पति सभी स्थानों पर इसी नियम का सिक्का (आतंक वा राज्य) है। असभ्य जातियों और पशुओं की दशाओं को पढ़ने से भी यही मालूम होता है कि उनके खून के प्रत्येक बूँद पर लिख दिया गया है कि आगे बढ़ो। कहा गया है और सच कहा गया है कि उन्नति (Evolution) जंगोजदल (पुरुषार्थ) से, परिश्रम से, और कष्ट उठाने से होती है। जो व्यक्ति परिश्रम और प्रयत्न न करेगा, वह नष्ट होगा और कुचला जायगा। जिस तरह एक गाड़ी में घोड़ा जोता जाता है, उसका काम है कि गाड़ी को खींचकर आगे ले जाय। यदि वह न चले और रुक जाय, तो कोचवान उस पर चाबुक-पर चाबुक मारता है। यही दशा व्यक्तियों और जातियों की है।

जो व्यक्ति या जाति आगे चलने से इनकार करती है उसको दैव या प्रकृति (Providence) के नियम चाबुक मारते हैं। यह नियम अटल है। इसके व्यवहार में कभी रिआयत नहीं हो सकती। परमेश्वर को किसी जाति या सम्प्रदाय का पक्ष नहीं है। जो कोई उसके नियम के अनुसार चलता है, वह उसका प्यारा है, वह बचता है; किंतु जो उसके नियम को तोड़ता है, वह उसका शत्रु है, वह मरता है और नष्ट होता है। ज़रा देखो तो, यदि तुम सांसारिक गवर्नमेंट के नियमों के विरुद्ध चलो, तो तत्काल दण्ड पा जाते हो, किसी तरह बच नहीं सकते। जब सांसारिक गवर्नमेंट के नियमों के विरुद्ध चलने का यह हाल है, तो भला परमेश्वर के नियमों के विरुद्ध चलना और बचने की आशा करना बिलकुल मूर्खता है या नहीं। धर्मशास्त्र के अनुसार भी आगे

बढ़ने से इनकार करने का ही नाम पाप है। इसको तमोगुण कहते हैं। भौतिक विज्ञान-शास्त्र हमको सिखाता है कि गति के नियमों में से एक नियम का नाम है जड़ता का नियम (Law of Inertia) अपनी दशा बदलने से इनकार करने को जड़ता कहते हैं। प्रत्येक वस्तु में यह भाव या स्वभाव है कि वह अपनी दशा बदलना नहीं चाहती। यही सुस्ती, शिथिलता या जड़ता है। हमारे शास्त्रों में श्रम या शक्ति से शून्य होने को तमोगुण कहते हैं। यह नियम विस्तार के साथ इन शब्दों में वर्णन किया जा सकता है कि यदि एक वस्तु को स्थिर अवस्था में रक्खा जाय, तो वह सदैव उसी अवस्था में रहेगी और जब तक कोई चेतन वस्तु उस पर कार्य न करे, उस समय तक वह अपनी दशा नहीं बदलेगी। इसी प्रकार यदि एक वस्तु को गति की दशा में रक्खा जाय, तो वह बराबर उसी दशा में रहेगी, और जब तक कोई चेतन वस्तु उस पर कार्य न करे, उस समय तक वह उस दशा को परिवर्तित नहीं करेगी। इसको स्थिरता का नियम भी कहते हैं। अतः आगे न बढ़ना, या यों कहिए कि अपनी दशा को परिवर्तित न करना, जड़ता है, तमोगुण है, अर्थात् पाप है। एक दूसरा नियम (Law of Acceleration) वर्धमानता या गत्यन्तर का नियम है। इससे रजोगुण प्रकट होता है; अर्थात् यह वह दशा है कि जब जड़ता के ऊपर अपना वश वा शासन प्राप्त हो जाता है। और आगे बढ़ने या दशा परिवर्तिन करने का विचार और उसकी शक्ति आ जाती है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि मनुष्य तो अनन्त-स्वरूप है, उसमें यह पाप कहाँ से आया। इसका उत्तर कुछ लोग यों देते हैं कि प्रथम पाप हज़रत आदम ने किया था और उसमें से हमको यह बपौती मिली। राम इस प्रश्न पर इस ढंग से बहस

नहीं करेगा। राम आपको बतलायेगा कि ज़रा हिन्दू-शास्त्र (Hindu Philosophy) को ओर ध्यान दो और देखो कि उसने क्या सिखाया है। यहाँ पर पुनर्जन्म का प्रश्न आ जाता है, जो सच है, और जो स्वतः एक स्वतंत्र व्याख्यान का विषय है। राम इस समय उस पर कुछ नहीं बोलेगा। हमको हिन्दू-शास्त्र यह सिखाता है कि मनुष्य चौरासी लाख योनियों में से घूम कर आया है। विज्ञान का भी यह एक निर्णीत सिद्धान्त है कि मनुष्य सबके पश्चात् उत्पन्न हुआ है। इतिहास-चिह्न-विद्या (Archeology) और भूगर्भ-विद्या (Geology) आदि से इसका पूरा प्रमाण मिलता है। गर्भ-शास्त्र (Embryology) भी इसको सिद्ध करता है। यह नवीन विद्या है, जिसका हेकल (Haeckel) ने आविष्कार किया है। इस विद्या के प्रत्यक्ष अनुभवों से भली भाँति सिद्ध होता है कि मनुष्य सबसे बाद में आया। राम स्वयं एक अद्भुतालय (अजायबघर) में गया। उसमें देखा कि गर्भ के भीतर के एक दिन, दो दिन, तीन दिन, पाँच दिन, इसी क्रम से महीने, दो महीने तक के भ्रूण (बच्चे) शीशियों के भीतर स्पिरिट में रक्खे हुए थे। उससे ज्ञात होता था कि माता के पेट में चेतन की क्या अवस्था होती है। वह भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है—अर्थात् मछली, मेंढक, कुत्ता, बन्दर आदि दशाओं में से होकर उसके बाद मनुष्य की अवस्था धारण करता है। अतः स्पष्ट सिद्ध है कि मनुष्य संसार में सबसे बाद को आया। और क्योंकि वह पाशविक अवस्थाओं को छोड़कर आया है, इसलिये उसमें अभी तमोगुण (Animal passion) शेष है, इसलिये उसमें पाप पाये जाते हैं। पाप या पुण्य, ये सापेक्षिक शब्द (Relative terms) हैं। जो वस्तु एक दशा में पाप है, वह दूसरी दशा में पुण्य है। बच्चे के लिये जो पाप नहीं है, वह बूढ़े के लिये पाप है। चौथी

श्रेणी का एक बालक अपनी कक्षा की पुस्तकों को पढ़ता है, वह उसके लिये पुण्य है, किन्तु यदि एम० ए० क्लास का एक विद्यार्थी अपनी पुस्तकें छोड़कर चौथी श्रेणी की पुस्तकें पढ़े, तो उसके लिये पाप है। एफ़० ए० क्लास से उन्नति पाकर बी० ए० में पढ़ना पुण्य है, किन्तु बी० ए० में फ़ेल होकर पुनः-पुनः बी० ए० में पढ़ना पाप है। इससे स्पष्ट होता है कि पाप की जड़-मूल यह है कि एक अवस्था से उन्नति न करना। इसी प्रकार जो बातें पशुओं में मौजूद थीं और उनमें पाप न थीं, परन्तु मनुष्य की अवस्था में आने से पाप में परिवर्तित हो गईं। पशुओं की दशा छोड़ने के पश्चात् मनुष्य मनुष्य की दशा में आता है, किन्तु उसमें तमोगुण (Animal passion) शेष रहता है। यदि इस समय वह उस बुद्धि से, जो उसको पशुओं से पहचान करने के लिये दी गई है, काम न ले और इस बात पर विचार न करे कि क्या उसके लिये पुण्य है और क्या उसके लिये पाप है, तो वह जड़ता के नियम (Law of Inertia) के अनुसार जड़ है, क्योंकि वह अपनी अवस्था परिवर्तन करना नहीं चाहता है। वह उन बातों को, जो उसमें पशुता की अभी शेष हैं, ज्यों की त्यों रहने देना चाहता है, और बुद्धि के प्रकाश से लाभान्वित होकर आगे नहीं बढ़ना चाहता है। अतः जो व्यक्ति आगे बढ़ने के लिये तैयार नहीं है, वह पाप करता है। यही पाप का तत्व है, और यही है सम्बन्ध जिस के कारण पाप मनुष्य में आता है।

आपकी बाइसिकिल का पहिया घूम रहा है, और आपका कुत्ता उसके आगे-आगे दौड़ता चला जा रहा है। यदि वह बराबर चला जायगा, तो उसको कोई सदमा (चोट) आपकी बाइसिकिल के पहिये से नहीं पहुँचेगा, किन्तु यदि वह रुक जाय या आपकी बाइसिकिल की चाल की अपेक्षा अपनी चाल कम कर दे, तो

वह अवश्य पहिये के नीचे दब जायगा। हाँ, एक उपाय उसके बचाने का यह भी है कि आप स्वयं अपनी बाइसिकिल को रोक दें। इसी तरह पर काल का पहिया चक्कर लगा रहा है। उसके साथ-साथ दौड़ो तो कुशल है, नहीं तो उसके नीचे दबकर मरना आवश्यक है। यहाँ एक कठिनता और भी है कि परमेश्वर अपने पहिये को नहीं रोकेगा। उसके नियम अटल हैं, वे सदैव प्रचलित हैं। वहाँ किसी का पक्षपात नहीं है।

अतः उन्नति करो, नहीं तो कुचले जाओगे, पिस जाओगे और नष्ट हो जाओगे। वे ही जातियाँ नष्ट होती हैं, जो आगे नहीं चलती हैं, या जो सदैव पीछे ही को पग हटाती हैं, जो नवीनता (originality) और नूतन मार्ग प्रवर्तन (innovation) को पाप समझती हैं। राम इन शब्दों की व्याख्या नहीं करेगा। इसका तात्पर्य तो आप अपने आप समझ गये होंगे। इससे यह परिणाम निकला कि उन्नति के अर्थ प्रयत्न और पुरुषार्थ के हैं।

इस पर यह प्रश्न होता है कि यह तो सत्य है कि उन्नति के अर्थ प्रयत्न के हैं; किन्तु प्रयत्न से क्या होता है, प्रत्येक वस्तु प्रारब्ध के अधीन है, अर्थात् भाग्य पर निर्भर है। यह विषय स्वयं ऐसा है कि इस पर एक स्वतन्त्र व्याख्यान दिया जाय, किंतु संक्षेपतः उत्तर यह है:—

तत्व तो यह है कि जो लोग कहते हैं कि प्रत्येक काम भाग्य से होता है, वे भी सच कहते हैं। वे इस सिद्धान्त को लागू करने में भूल करते हैं। दृष्टान्त रूप से, जैसी ऋतु होगी, वैसा स्वभाव हो जायगा। जाड़े की ऋतु में गरम कपड़े पहनोगे, घर के भीतर रहोगे, आग जलाओगे, आदि-आदि। गरमी की ऋतु में मैदान में रहोगे, ठण्ढे कपड़े पहनोगे, ठण्ढा पानी पियोगे, आदि-आदि।

अब ऋतु का बदलना दैव-इच्छा वा भाग्य या प्रारब्ध है,

अर्थात् वह एक नियत नियम है। और यह प्रारब्ध सारे देश पर प्रभुत्व स्थापन किये हुए है, किंतु ऋतु के अनुसार कपड़े पहनना और उसके अनुसार स्वभावों को बनाना अपने ही पुरुषार्थ पर निर्भर है। परिवर्तित ऋतु की दशा इसमें कुछ नहीं कर सकती। चोर चोरी करता है, विद्यार्थी पढ़ता है, जज मुक़द्दमे फ़ैसल करता है, ये सब लोग अपने-अपने काम सूर्य की सहायता से करते हैं। इन लोगों में काम करने की शक्ति अन्न खाने से आती है, अन्न सूर्य के प्रकाश और शक्ति को खा जाता है। इस प्रकार वही सूर्य का तेज इन लोगों में आकर काम करता है। दीपक के प्रकाश में भी वह ज्योति है, जो उसने सूर्य से उधार ली है। अतः स्पष्ट है कि वस्तुतः इन सबके कामों का करने-वाला सूर्य है। किंतु क्या बात है कि सूर्य को कोई चोरी का लांछन नहीं लगाता है। उसको क्यों नहीं अपराधी निश्चित किया जाता? कारण यह है कि सूर्य सामान्य अवयव (Common factor) है, क्योंकि उसने वकील, मुद्दई और जज को भी उसी तरह की शक्ति दी है, जिस तरह पर कि चोर को। व्यवहार में सामान्य अवयव (Common factor) निकाल दिया जाता है। जिस तरह अवयव तुलना में अ-ब=ज-ब के अथ अ = ज हैं, अर्थात् ब जो सामान्य अवयव (Common factor) था, ख़ारिज कर दिया गया, और इस समानता में कोई अन्तर भी नहीं आया। इसी तरह पर कल्पना करो कि एक मनुष्य दूसरे के धक्के से गिर पड़ा, तो वस्तुतः इसके गिरने का कारण गुरुत्वाकर्षण का नियम (Law of gravitation) है, किंतु वह उस नियम से नहीं लड़ेगा। वह तो उस धक्का देनेवाले को पकड़ेगा। अतः प्रत्येक मनुष्य में कुछ भाग अस्थिर (Variable) है, और कुछ भाग स्थिर (Invariable) है। स्थिर भाग तो प्रारब्ध है, और अस्थिर भाग पुरुषार्थ है। अब यह देखना है कि इन दोनों में कोई सम्बन्ध भी है

या एक दूसरे से वे बिलकुल सम्बन्ध-रहित और निष्प्रयोजन हैं। राम इसको व्यावहारिक दृष्टि से आपके समक्ष उपस्थित कर रहा है। इनमें एक विशेष सम्बन्ध है। आपकी प्रारब्ध आप ही की बनाई हुई है। यदि पुरुषार्थ कोई वस्तु ही नहीं है, तो धार्मिक पुस्तकों में विधि और निषेध क्यों सिखाया गया है? इसी के लिये कहा है–

दर्मियाने - कारे - दरिया तख़्ताबंदम करदई ;
बाज़ मी गोई कि दामन तर मकुन हुशियार बाश।

अर्थ–नदी के भारी वेग में तो हाथ-पाँव बाँधकर मुझे डाल दिया, और फिर यह तू कहता है कि होशियार हो। पल्ला मत भीगने दो, अर्थात् लिपायमान मत हो।

धार्मिक पुस्तकों के देखने से, चाहे वे मुसलमान, हिंदू या ईसाई धर्म की हों, यह स्पष्ट विदित होता है कि उन्होंने आपके भीतर पुरुषार्थ का एक अंश पाया है।

अब राम दोनों का सम्बन्ध दिखाता है। रेलगाड़ी पटरी को छोड़कर इधर या उधर नहीं जा सकती है। पटरी उसकी भाग्य है, किंतु चलने में वह स्वतन्त्र है, यह उसका पुरुषार्थ है। किंतु रेल जारी होने से पहले पटरी भी रेलवालों के अधिकार में थी। इसी प्रकार एक व्यक्ति एक ग़रीब के यहाँ उत्पन्न होता है, जहाँ उसके माता-पिता खाने तक को मुहताज हैं। वे उसकी सामान्य परिपालना भी नहीं कर सकते। एक दूसरा व्यक्ति किसी अमीर के यहाँ उत्पन्न होता है, और दूसरा किसी घोर मूर्ख के यहाँ जन्म लेता है। यह तो रेल की पटरी की तरह उसकी प्रारब्ध है, किंतु इसमें पुरुषार्थ का भी भाग है, जिसके कारण वह अपनी दशा को सँभाल सकता है। विदित रहे कि यह भाग्य की पटरी उन्हीं के पुरुषार्थ के अनुसार

बनाई जाती है। देखो, मकड़ी अपने मुँह से तार निकालती है, और उसके बाद उसी पर चलती है। अब वह किसी दूसरी ओर नहीं जा सकती, यदि वह किसी दूसरी ओर जाना चाहे, तो फिर वह अपने मुँह से तार निकाले और उसको उसी ओर ले जाय, तब उस ओर भी जा सकती है। तार निकलने से पहले वह तार निकालने का काम उसका पुरुषार्थ था, किंतु निकलने के बाद वह उसकी प्रारब्ध बन गया। अब उसको उस पर चलने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

यह विदित है कि तार निकालने से पहले उसके अधिकार में था कि किसी ओर इसको ले जावे, अर्थात् अपनी प्रारब्ध का बनाना उसके अधिकार में था। किन्तु जब एक बार वह बन गई फिर उसके बदलने के लिये पुनःपुनः वही कल की कार्रवाई करनी पड़ती है, जो एक बार कर चुकी है। रेशम के कीड़े की दशा से भी यही सिद्ध होता है। एक और उदाहरण लीजिए। कल्पना कीजिए कि एक मनुष्य दस्तावेज़ लिखना चाहता है, अर्थात् कुछ पुरुषार्थ करना चाहता है। अब इस पुरुषार्थ के समय उसको अधिकार है कि करे या न करे (अर्थात् दस्तावेज़ लिखे या न लिखे), अथवा जो शर्तें चाहे लिखे। किन्तु जब एक बार लिख चुका, तो फिर पाबंद हो गया। वह उसकी प्रारब्ध बन गई। अब सिवाय शर्तों की पाबन्दी के और कोई इलाज नहीं है। यथा—

यारे-मन ख़ुद कर्दा रा इलाजे नेस्त ;
कर्दनी ख़्वेश व आमदनी पेश।

अर्थ—मेरे प्यारे! अपने किये हुए पुरुषार्थ का और कोई इलाज नहीं, सिवाय इसके कि जो कुछ किया है, वह भोगने को सामने आवे।

हैं ख़ते-तक़दीर से यह ख़ते पेशानियाँ ;
पेश आती हैं यही जो हैं पेश-आनियाँ ।

योगवाशिष्ठ में लिखा है कि पुरुषार्थ ही से कार्य की सिद्धि होती है। सारे बुद्धिमान् लोगों के काम पुरुषार्थ ही से होते हैं। प्रारब्ध का शब्द तो केवल उन लोगों के आँसू पोंछने के वास्ते बनाया गया था, जो कोमल-चित्त हैं, और जिन पर कोई विपत्ति आ पड़ी है, नहीं तो नित्यप्रति जीवन के कुल काम पुरुषार्थ ही से हो सकते हैं। मनुष्य भोजन भी पुरुषार्थ ही से खाता है, पानी भी पुरुषार्थ ही से पीता है, नौकरी भी पुरुषार्थ ही से करता है, कोई सार्वजनिक काम भी पुरुषार्थ ही से करता है।

इस भूमिका के पश्चात् राम जरूरी उन्नति को, सफलता के साथ करने के उपायों को बताता है। उद्योगों में कृतकार्यता प्राप्त करने के लिये इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) सांसारिक काम-धंधों के निमित्ति सबसे पहली वस्तु प्रकाश है। कैसा ही निर्मल और स्वच्छ घर क्यों न हो, यदि अँधेरे में जाओगे, तो कहीं कुरसी को चोट लगेगी, कहीं दीवार से सिर टकरायेगा, कहीं लैम्प से ठोकर लगेगी, और वह टूट जायगा; निदान, पग-पग पर दुःख ही दुःख होगा। फिर विना प्रकाश के कोई वस्तु उग नहीं सकती। एक पौधा अँधेरे में बोया जाय और दूसरा प्रकाश में, और दोनों का सींचना एक ही प्रकार किया जाय। परिणाम क्या होगा ? स्पष्ट है कि अँधेरे में बोया हुआ पौधा सूख जायगा और प्रकाशवाला खूब हरा-भरा होता चला जायगा। फिर जब बिना प्रकाश के वृक्ष नहीं

उन्नति कर सकते हैं, तो मनुष्य का उन्नति करना तो एक किनारे ही रहा। अब प्रकाश से प्रयोजन क्या है ? वही ध्यान, जिसका उल्लेख राम भाषण के आरंभ में कर आया है। वही तेजों का तेज, ज्योतिः स्वरूप आत्मदेव, उसका न भूलना इसी का नाम प्रकाश है। अब इस पर कदाचित् कहो कि यह क्या बेहूदगी है। संसार में सहस्रों नास्तिक हुए हैं, क्या उन्होंने कोई उन्नति नहीं की है। राम का उत्तर यह है कि ये सुप्रसिद्ध लोग, जिनको आप नास्तिक कहते हैं और जो बड़े-बड़े काम कर गये हैं, जैसे हरबर्ट स्पेंसर, स्पाइनोज़ा और हक्सले (Herbert Spencer, Spinoza और Huxley) आदि। मान भी लीजिये कि ये लोग नास्तिक थे; किन्तु व्यावहारिक रीति पर अर्थात् प्रत्यक्ष रूप से इनकी उन्नति का कारण उनकी ईश्वर-प्रमुखता और उनकी ईश्वरोपासना ही है। इन लोगों के जीवन-चरित्रों को पढ़िए। इससे ज्ञात होगा कि यद्यपि ये लोग हमारे माने हुए ईश्वर को नहीं मानते थे, किंतु वे ईश्वर के भाव (Spirit) को अपनी नस-नस में रखते थे। एक राजा के यहाँ दो नौकर हैं। इनमें से एक तो राजा की खूब खुशामद करता है, किन्तु काम कुछ नहीं करता है; दूसरा राजा की खुशामद (चाटूक्ति) से कुछ प्रयोजन नहीं रखता, केवल अपना धार्मिक कर्त्तव्य अत्यन्त सुन्दरता के साथ पालन करता है। अब प्रश्न यह है कि राजा किससे प्रसन्न होगा ? स्पष्ट विदित है कि वह काम करनेवाले से प्रसन्न होगा। काम प्यारा है; चाम नहीं प्यारा है। बस, यही दशा उन नास्तिकों की है। उन्होंने माला नहीं जपी, उन्होंने माथा नहीं रगड़ा, किन्तु उन्होंने अपने आचरण से ईश्वर की उपासना की, उनका प्रत्येक काम माला का एक दाना था, और उनकी

जीवनी एक माला थी। राम आपसे यह नहीं कहता कि आप नास्तिक हो जाइए। आप ईश्वर-दर्शन भी कीजिए और काम भी कीजिए; किन्तु नास्तिकों की भाँति प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म नहीं कर सकता। कोरे ज्ञानयोग से भी उन्नति नहीं कर सकता, सहारे की आवश्यकता है। कोरे सगुण ईश्वर (Personal God) का मानना तो इस सहारे की आवश्यकता के कारण से है। अतः उन लोगों को, जो बिना सहारे के नहीं चल सकते, यह चाहिए कि नित्यप्रति बिला नाग़ा आध्यात्मिक भोजन खायँ। इससे उनको बड़ी सहायता मिलेगी। वह आध्यात्मिक भोजन क्या है? ध्यान, भजन, उपासना। क्रामवेल (Cromwell) और महाराजा रणजीतसिंह इत्यादि के विषय में लिखा है कि जब ये कोई युद्ध आरम्भ करते थे, तो अपने तन, मन और धन को परमात्मा के अर्पण करके प्रार्थना के साथ काम का आरम्भ करते थे और कृतकार्य होते थे। ऐसे ही लोगों के लिये कहा है कि—

दौलत ग़ुलामे-मन शुदो इक़बाल चाकरम्।
अर्थ—दौलत मेरी ग़ुलाम है और इक़बाल है चाकर।
अथवा—बाँधे हुए हाथों को बउम्मेदे-इजाज़त;
हैं रहते खड़े सैकड़ों मज़मूँ मेरे आगे।

किन्तु प्रार्थना में दो अंश है—एक माँगना, दूसरा अर्पण करना। माँगने का अंश स्वार्थपरता है; अर्पण करना ही प्रार्थना का सच्चा अंश है, और यही ईश्वर-संग, ईश्वर-संभाषण (Communion with God) है। इसका मतलब यह है कि जो कर्म किया जाता है, वह ईश्वर के लिये किया जाता है। समर्पण का अर्थ हृदय में प्रकाश का रखना है, और यही सच्ची प्रार्थना है। जो व्यक्ति अपने हृदय को ऋणात्मक (Negative)

दशा में रखता है, अर्थात् जो सदैव इच्छाओं का दास बना रहता है, उनके कामों में बड़ी हानि होती है, और ऐसे लोग कभी सफल नहीं होते। सफल वे ही होते हैं, जो सदैव नत-मस्तक और हँसमुख रहते हैं। शोकातुर लोगों की उन्नति नहीं हो सकती। जैसी आपके भीतर की दशा होगी, वैसी ही आपकी सफलताएँ भी होंगी। यह प्रसिद्ध उक्ति है—

"घर से जाओ खा के, बाहर मिले पका के,
घर से जाओ भूखे, बाहर मिलें धक्के।"

यदि आप धन या सन्तान की कामना से परमेश्वर की भक्ति करते हैं, तो वह परमेश्वर की भक्ति नहीं है, वरन् वह तो अपनी स्वार्थपरता की भक्ति है। आप वास्तव में परमेश्वर की भक्ति नहीं करते, वरन् उनको अपना खानसामा बनाते हैं कि वह हर समय आपकी सेवा को उपस्थित रहे, और जब जिस वस्तु की आपको आवश्यकता हो, उसको वह तत्काल आपके सम्मुख लाता रहे।

अहा! यह तो उल्टी गंगा बहाना है। प्यारे! परमेश्वर को अपनी विषय-कामनाओं के लिये मत नचाओ। आपको चाहिए कि प्रत्येक काम को हिम्मत और शांति के साथ करो। यही सफलता का साधन है। अगर आपके पास कोई व्यक्ति भीख माँगने आए, तो आप उससे आँख चुराते हो, इसी तरह जब आप परमेश्वर के पास भिखारी बनकर जाओगे, तो वह भी आपसे आँख चुराएगा। परमेश्वर से हृदय की शुद्धता और भक्ति के साथ मिलो। यदि आपके यहाँ कोई बड़ा आदमी आवे, तो आप उसको बड़े आदर से बिठा लेते हैं, किंतु एक थका और दीन मनुष्य आपके पास बैठना चाहे,

तो आप उससे घृणा करते हैं। याद रक्खो कि यह आत्मा कमज़ोर से नहीं मिलना चाहता। दुर्बल को परमेश्वर के घर में दाल नहीं गलती।

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।"

यथा—हर दीदा जलवागाहे-आँ माह पारा नेस्त।

अर्थ—प्रत्येक चक्षु से उस (प्रिय स्वरूप परमात्मा) का प्रकाश समान रूप से ज्ञात नहीं होता है।

आप इसकी चिंता न करो कि आपकी आवश्यकतायें कहाँ से पूरी होंगी। राम आपको प्रकृति का नियम बतलाता है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता का पदार्थ उसके पास अपने आप पहुँच जाता है। (Law of affinity) जिसको रसायन-शास्त्र में प्रीति-नियम कहते हैं, यह प्रकृति का नियम है, जिसके अनुसार जलते हुए दीपक को ऑक्सीजन वायु-मंडल से प्राप्त हो जाता है। अतः यदि आप अपने शरीर को प्रत्येक के लिये जला रहे हैं, तो आपके पास आपका भोजन अपने आप खिंचकर आ जायगा। आपके पास वे वस्तुएँ जिनकी आपको आवश्यकता है, अपने आप आयेंगी। देखो, प्रकृति ने अपने विचित्र खेल का क्या प्रबन्ध कर रक्खा है। जब दीपक जैसी निर्जीव वस्तु के लिये प्रकृति ने उसके भोजन का प्रबन्ध कर दिया है, तो क्या मनुष्य ही वंचित रहेगा? नहीं, कदापि नहीं। किंतु शर्त यह है कि अपने में भी पिघलाहट चाहिए।

असर है जज़्बे-उल्फ़त में तो खिंचकर आ ही जायेंगे;
हमें परवा नहीं उनसे अगर वे तन के बैठे हैं।

आप नाना वस्तुओं को रँगदार देखते हैं, किंतु ये रंग वस्तुओं के निजी नहीं हैं। पत्ते का रंग हरा दिखाई देता है, किन्तु यह

हरा रंग पत्ते का नहीं है। रंग सब सूर्य के हैं; वस्तुओं के नहीं हैं। यदि रंग वस्तुतः चीज़ों के होते और सूर्य के न होते, तो उनको अंधेरे में देखने से भी वे दिखाई देते। यदि आप एक पत्ते को अँधेरे में देखें, तो आप उसके अन्य सब अंगों को अनुभव करेंगे, किंतु रंग का अनुभव नहीं करेंगे। कारण यह है कि यह रंग तो रंगवाले का है, हरे पत्तों में एक मसाला है—क्लोरोफाइल (Chlorophyl)। इसमें यह गुण है कि वह सूर्य की किरण के और सब रंग खा लेता है, किन्तु हरे रंग को लौटा देता है। अर्थात् यह कि जो रंग इस पत्ते में बिलकुल नहीं है, वही हम कहते हैं कि पत्ते का रंग है। काली वस्तुएँ वे हैं, जो सूर्य के उन सब सातों रंगों को खाती हैं। सफ़ेद वस्तुएँ वे हैं, जो उन सातों में से एक को भी नहीं खातीं, सबको लौटा देती हैं। यह प्रकृति का नियम प्रत्यक्ष जगत् में मालूम होता है, किन्तु नियम प्रत्येक स्थान पर एक ही है। वही नियम बाह्य जगत् में है, और वही आभ्यन्तर जगत् में भी है। आभ्यन्तर जगत् में इस नियम को देखो। जिस प्रकार सूर्य में ये सात रंग हैं भी और नहीं भी हैं, उसी प्रकार परमेश्वर में भी सब गुण हैं भी और नहीं भी हैं। इसी का नाम माया है। जिस बात की हम पूर्ण रूप से व्याख्या न कर सकें, उसी का नाम माया है। संसार के लोगों को जो गुण दिये जाते हैं, वे वस्तुतः उनके नहीं हैं। वे परमात्मा के हैं। किन्तु मनुष्य के गुण वे इस कारण कहलाते हैं कि मनुष्य उनके साथ काम करता है, अर्थात् उनको वास्तविक स्रोत की ओर लौटाता है। धनवाला धन को व्यय करने के कारण धनी बना है, बुद्धिमान् बुद्धि को व्यय करने से बुद्धिमान् बना है। दायाँ हाथ बाएँ से अधिक बलवान् क्यों है? क्योंकि वह शक्ति का प्रयोग करता रहता है, अर्थात्

क्लोरोफ़ाइल (Chlorophyl) के समान ये सब सदैव काम किया करते हैं। प्रकृति का एक नियम यह है जितना व्यय करोगे, उतना पाओगे। काले मनुष्य वे होते हैं, जो कहते हैं "यह भी मेरा है, वह भी मेरा है।" सफेद वे होते हैं, जो प्रत्येक वस्तु को परमेश्वर के समर्पण करते चले जाते हैं, अर्थात् जो परोपकार करते हैं, अथवा जो अपने प्रत्येक काम को परमेश्वर के लिये करते हैं। मतलब यह कि वे यह नहीं कहते कि अमुक काम में हमने यों सफलता प्राप्त की, वरन् वे इस सबको परमेश्वर के कारण से कहते हैं। शाह महमूद ग़ज़नवी का एक सच्चा मित्र आयाज़ नामक था, जो वास्तव में घसियारा था, किंतु बादशाह की मित्रता के कारण इसका यहाँ तक उत्कर्ष हुआ कि वह मंत्री के पद पर नियुक्त किया गया। जब उसका उत्कर्ष हुआ, तो कई ईर्ष्यायुक्त पुरुषों, डाहियों को बुरा मालूम हुआ। और ये इस चिंता में लगे कि इसको किसी प्रकार नीचा दिखायें; अतः उन्होंने महमूद से शिकायत की कि आयाज़ प्रति-दिन ख़ज़ाने में जाता है और वहाँ से रत्न निकाल ले जाता है। महमूद ने चाहा कि उसको अपनी आँख से देखें। एक दिन जब आयाज़ अपने नियत समय पर ख़ज़ाने में गया, तो लोगों ने बादशाह को सूचना दी। महमूद उन लोगों के साथ वहाँ गया और झरोखों के द्वारा देखने लगा। वहाँ क्या देखता है कि आयाज़ ने अपने मंत्री-वेष के सब वस्त्र उतार कर एक ओर रख दिए और अपने खुरपे को अपने सामने रख लिया और कंबल बिछाकर उस पर नमाज़ पढ़ रहा है, और यह स्मरण कर रहा है कि हे भगवन्! यह मंत्रित्व मेरा नहीं है, यह तेरा है; ये मंत्रियों के वस्त्रादि मेरे नहीं हैं, तेरे हैं: इस शरीर में शक्ति तेरी है;

यह आँख में ज्योति तेरी है; यह बाहुओं में बल तेरा है—अर्थात् वह अपने समस्त रंगों को जो जहाँ से आए थे, वहाँ को वापस लौटा रहा था और प्रेम से बार-बार रोता था। जब आयाज़ इससे निवृत्त होकर जाने का संकल्प करने लगा, तो महमूद तत्काल वहाँ पहुँच गया और आयाज़ से कहने लगा कि तुम मेरे गुरु हो, तुमने मुझको बचा लिया, नहीं तो मैं तो संसार के उन प्रलोभनों में डूब चुका था। अतः सफलता की पहली शर्त यह है कि हृदयों में प्रकाश भर जाय। प्रकाश अर्पण से भर जाता है। कर्म करने का तुमको अधिकार है, किन्तु कर्म करने के साथ जो स्वार्थपरता लगी हुई है, उसको छोड़ दो। जिन लोगों और जिन जातियों को सफलता हुई है, उनको इसी प्रकार व्यवहार करने से हुई है। यदि किसी इतिहास या जीवन-चरित्र में इसके विरुद्ध लिखा है कि कोई व्यक्ति या कोई जाति स्वार्थपरता के साथ काम करके कृतकार्य हुई है, तो उसके सम्बन्ध में राम अत्यन्त ज़ोर के साथ कहता है कि वह ग़लत है और सरासर झूठ है। आर्थर हेल्प्स (Arther Helps) ने ऐसे ही अवसरों पर कहा है कि मुझको इतिहास मत दिखाओ, क्योंकि वह अवश्य मिथ्या होगा। जितना ही आप संसार के पीछे पड़ोगे, उतना ही वह आपसे दूर रहेगा।

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम ;
अब जो नफ़रत हमने की, वह बेक़रार आने को है।

निदान जब तक आप अपने मन को हाय-हाय, वाय-वाय में रखते हैं, उस समय तक आपका प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। परमेश्वर आनन्दस्वरूप है। जो मनुष्य आनन्द में रहता है, वह परमेश्वर में रहता है, और परमेश्वर उसमें रहता है। परमेश्वर का ध्यान करने की विधि यह है कि जो वस्तु आपके

पास मौजूद हो, उस पर संतोष करके उससे लाभान्वित हो। अतः इस समय जितना प्रकाश या ईश्वरीय ज्योति आपके पास मौजूद है, उसको वर्ताव में लाओ। उसके पश्चात् आपको आगे मार्ग मिलेगा। इस रीति पर व्यवहार करने से धार्मिक लड़ाई-झगड़े तत्काल बन्द हो सकते हैं। आप प्रश्न करेंगे कि यह कैसे सम्भव है? इसका उत्तर स्पष्ट है। आप अपने धार्मिक नियमों को व्यवहार में लाइये, फिर देखिये कि धार्मिक लड़ाई-झगड़े बन्द होते हैं या नहीं। लड़ाई-झगड़े तो उस मार्ग को छोड़ देने से उत्पन्न होते हैं। आपके पास एक लालटैन है, जो दो सौ क़दम तक आपको आपका रास्ता दिखला सकती है। अब यदि आप इस प्रकाश के सहारे दो सौ पग तक चले जाओ, तो वहाँ से वही (लालटैन) दो सौ क़दम और आगे तक आपको ले जा सकेगी। इसी तरह पर उस लालटैन के सहारे से, जिसमें केवल दो सौ क़दम तक प्रकाश डालने की शक्ति है, आप कोसों तक पहुँच सकते हैं; किन्तु यदि आप पहले ही से अपनी कोसों की मंज़िल का ख़याल करने लगें, तो परिणाम क्या होगा? स्पष्ट है कि लड़ाई-झगड़ा उत्पन्न होगा। यही दशा आपके धार्मिक सिद्धान्तों की है। यदि आप उन पर अमल करते जाओगे, तो कभी लड़ाई-झगड़े की दशा न आयेगी। यदि आप उनके प्रकाश को पृथक् रखकर पहले तर्क-वितर्क करने लगोगे, तो झगड़ा होना आवश्यक है। धार्मिक युद्ध केवल वे ही लोग करते हैं, जो अपने भीतर के प्रकाश को व्यवहार में नहीं लाते हैं—

सद जाँ फ़िदाए-आँकि ज़ुबानो दिलश यकेस्त।

अर्थ—जिनका दिल और वाणी एक हैं, उन पर सैकड़ों जानें न्यौछावर (क़ुरबान) हैं।

कदाचित् इस पर यह आपत्ति हो कि हम तो भूमि पर रहते हैं, हमसे भूमि की बातें कहना चाहिए। ये अलौकिक बातें हमारे किस काम को? प्यारे! इसका यही उत्तर है कि यहाँ धरती पर भी ऐसा ही आचरण करना चाहिए—अर्थात् हाथ रहे काम में और मन रहे राम में। जब क़ुमरी (घुग्घी) सरो (वृक्ष) की शाखा पर बैठती है, उसकी जिह्वा से मीठे-मीठे राग और स्वर अपने आप ही निकलने लगते हैं। इसी तरह जब आपका मन उस ईश्वरीय प्रकाश से भर जाता है, तो आपके मन से भी वे प्यारे-प्यारे राग आप हीं निकलने आरम्भ हो जाते हैं। यह लैम्प जो रक्खा हुआ है, इससे प्रकाश क्यों निकलता है? कारण यह है कि इसकी चिमनी, जो इसका बाह्य शरीर है, स्वच्छ और निर्मल है। इस कारण इसके भीतर का प्रकाश विना रोक बाहर चला आता है। अब स्वच्छ होने से क्या प्रयोजन है? उसका प्रयोजन यह है कि इसने अपने मन की कालिमा और द्वेष-भाव को निकाल दिया है। इसी प्रकार यदि आप भी अपने मन की कालिमा और अहंकार के भाव को निकाल दें, तो आपके भीतर का प्रकाश भी अपने आप बाहर निकल आयगा। यथा—

> कब लिबासे-दुनयवी में छिपते हैं रोशन ज़मीर ;
> जामए-फ़ानूस में भी शोला उरयाँ ही रहा।
> कब सुबुकदोश रहे क़ैदिये - ज़िन्दाने - वतन ;
> बूए-गुल फाँदती है बाग़ की दीवारों को।

कदाचित् यह कहा जाय कि हम अपने धार्मिक सिद्धांतों की पाबन्दी करते हैं, और धार्मिक सिद्धान्त चाहते हैं कि झगड़ा किया जाय। इसका उत्तर यह है कि धार्मिक सिद्धान्तों का उद्देश कदापि लड़ाई-झगड़ा करना नहीं हो सकता। प्रत्येक धर्म

का पहला सिद्धांत यह है कि ईश्वर को जानो और मानो। क्या इस पर आप आचरण करते हैं? कदापि नहीं! यदि आप इस पर चलते होते, तो क्या आप परमेश्वर की इतनी भी परवाह और इज्ज़त न करते जितनी कि आप अपने ज़िले के कलेक्टर की करते हैं। यदि इस समय इस जलसे (समारोह) में कलेक्टर साहब आ जायँ तो सबकी साँस बन्द हो जायगी। प्रत्येक समय इस बात का ध्यान करेंगे कि कोई भद्दा वाक्य मुख से न निकल जाय, अथवा कोई निर्लज्ज चेष्टा न हो जाय। आप कभी कलेक्टर साहब के सामने चोरी न करेंगे, कभी उनके सामने किसी स्त्री को कुदृष्टि से न देखेंगे, और न उनके सामने कोई ख़राब वार्ता करेंगे।

बबीं तफ़ावत रा अज़ कुजास्त ता बकुजा !

अर्थः—देखिये, एक से दूसरे में अन्तर कितना है।

आपका धर्म सिखाता है कि परमेश्वर सर्वत्र विराजमान है। किन्तु शोक है और रोना आता है कि आप इस बात को जानकर भी हर प्रकार की पूर्वोक्त बातें करते हैं, और आपके मन में तनिक भी ईश्वर का भय नहीं आता है। यदि हम लोग परमेश्वर के अस्तित्व को मानते और जानते होते, तो उसकी उपस्थिति में स्त्रियों की ओर तकते हुए आँखें फूट न जातीं, झूठ बोलते समय ज़बान न निकल पड़ती? ब्रह्मश्रोतिय को ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए। यदि आचरण न हुआ, तो विद्या व्यर्थ है, वरन् हानिकारक है। मस्तिष्क की नसें जो ज्ञान को ग्रहण करती हैं, उनको ज्ञानेंद्रिय कहते हैं, और जो नसें भीतर के ज्ञान को बाहर व्यवहार में लाती हैं, उनको कर्मेंद्रिय कहते हैं, और स्वास्थ्य की दशा स्थिर रखने के लिये समस्त इन्द्रियों को काम में लाना ज़रूरी है, अन्यथा परिणाम अच्छा न होगा। जो

ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ नहीं होते, उनकी यह दशा होती है कि वे विद्या को भीतर ठूँसते जाते हैं, किंतु उसको बाहर नहीं निकालते हैं, अर्थात् एक प्रकार की इन्द्रियों से काम लेते हैं, और दूसरे प्रकार की इन्द्रियों को बेकार रखते हैं। इनको आध्यात्मिक क़ब्ज़ और बुद्धि का अजीर्ण हो जाता है। इसी के कारण वे लड़ाई-झगड़े में पड़ते रहते हैं। अतः शर्त यह हुई कि संसार में सफलता होने के वास्ते हमको चाहिए कि जितनी बुद्धि हमारे पास है, उसे केवल अक़्ली (तर्कवाली) ही न रक्खें, वरन् उसको व्यावहारिक भी बनावें। सफलता की दूसरी शर्त यह है कि ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए, चाहे आप नई रोशनी (विचार) के हों, या पुरानी रौशनी के; चाहे आपकी पुस्तकों ने उस पर जोर दिया हो अथवा न दिया हो, कुछ परवाह नहीं है। राम आपसे यह कहता है कि सफलता के लिये पवित्रता और ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि भारतवासी बचे रहना चाहते हैं, तो वीर्य को सुरक्षित रक्खें, अन्यथा कुचले जायँगे। यह दीपक आपके सामने जल रहा है, यह क्यों जलता है? इसके बीच के भाग में तेल भरा हुआ है। यह तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढ़ता है, और ऊपर आकर प्रकाश-रूप में परिवर्तित हो जाता है। यदि इसके तेलवाले भाग में कोई छिद्र हो जाय, तो उसका तेल धीरे धीरे बह जायगा, और फिर इससे प्रकाश न निकल सकेगा। यही दशा आपकी है। यदि आपके भीतर का वीर्य नीचे न गिरेगा, तो यह ऊपर चढ़कर मस्तिष्क में जाकर आत्मिक ज्योति बन जायगा। किन्तु यदि आप इसके विरुद्ध करेंगे, अर्थात् अपने वीर्य को गिरायेंगे, तो आपकी वही दीपक की सी दशा होगी। जिन लोगों के शरीर से कोई अपवित्र कर्म नहीं होता, या जिनके मन में कोई अपवित्र विचार उत्पन्न नहीं

होता, उनका वीर्य ऊपर चढ़कर बुद्धि में परिवर्तित हो जाता है। ऐसी ही अवस्था को इङ्गलैंड के प्रसिद्ध कवि ने यों वर्णन किया है—

My strength is as the strength of ten
Because my heart is pure. (Tennyson)

मेरी शक्ति है दसगुणी किसलिए
कि मेरा हृदय शुद्ध है, इसलिये।
दस ज्वानों की मुझमें है हिम्मत;
क्योंकि मुझमें है इफ़्फ़तो-अस्मत।

हनुमान् सबसे बड़ा वीर किस लिये था? क्योंकि वह यती था। कहते हैं कि मेघनाद बड़ा योद्धा था। उसको वही व्यक्ति मार सकता था, जिसके हृदय में १२ वर्ष तक कोई अपवित्र विचार न आया हो। यह कौन व्यक्ति था? यह श्री लक्ष्मण जी थे। भीष्म का नाम भीष्म इसी कारण से पड़ा कि वे जितेन्द्रिय थे। सर आइज़क न्यूटन जैसा प्रसिद्ध तत्त्वान्वेषक, जिसके ऊपर आज इङ्गलैंड को इतना अभिमान है, सत्तासी वर्ष तक जीवित रहा। मरते समय तक उसके होश-हवास बहुत ही ठीक थे, क्योंकि वह जितेन्द्रिय था, और अत्यंत पवित्र था। जिस तत्ववेत्ता ने संसार के तत्वज्ञान को पल्टा दिया, वह कौन था? वह कैंट (Kant) था। यह बड़ा भारी यती था। इसके मन में कभी अपवित्र विचार तक नहीं आया। अमेरिका के हेनरी डेविड थोरो (Henry David Thoreau) और जर्मनी के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) दोनों बड़े जितेन्द्रिय थे। इस समय अमेरिका, इँगलैंड, जापान आदि देश उन्नति कर हैं, इसका क्या कारण है? कारण यह है कि इनके यहाँ के गृहस्थ भी आपके यहाँ के जितेंद्रियों से अच्छे

हैं। प्रथम तो उनके विवाह बीस वर्ष के पश्चात् होते हैं, फिर उनकी स्त्रियाँ कैसी शिक्षिता होती हैं कि जब पुरुष और स्त्री मिलते हैं, तो उत्तमोत्तम विषयों पर वार्तालाप करते हैं, एक दूसरे के सत्संग से लाभ उठाते हैं, कभी अपवित्र विचारों का अवसर नहीं आने पाता। इसके विरुद्ध आपके यहाँ की स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होतीं। आपके यहाँ पुरुष और स्त्री की भेंट के अर्थ ही अपवित्र विचार हैं। और ठीक भी है। जब वह कुछ जानती ही नहीं, तो आप उससे क्या बातें करेंगे, सिवाय उन अपवित्र बातों के। अपने नित्यप्रति के जीवन में देखो कि पवित्रता का आपके कामों और संकल्पों पर क्या प्रभाव होता है। यदि आप पवित्र हैं, अर्थात् यदि आप अपने वीर्य (Sex energy) को सुरक्षित रक्खे हुए हैं, तो आप बहुत शीघ्र कृतकार्य होंगे। राम जब प्रोफ़ेसर था, उसका निजी अनुभव क्या था ? और जिस समय राम सफल या असफल विद्यार्थियों की सूची बनाता था और उनसे पूछा करता था कि परीक्षा से कुछ दिन पहले उनकी क्या अवस्था थी ? तो राम ने इससे भी परिणाम निकाला था कि जो विद्यार्थी परीक्षा से पहले उत्तम और पवित्र विचार रखते थे, वे कृतकार्य होते थे, और जो अपवित्र विचार रखते थे और सदैव भयभीत रहते थे कि कहीं असफल न हों, वे अनुत्तीर्ण ही रहते थे। अतः सिद्ध है कि जैसे जिसके विचार हृदय के भीतर होते हैं, वैसा ही उसको परिणाम प्रकट होता है। इस बात का प्रमाण इतिहास से भली भाँति मिल सकता है। प्रसिद्ध योद्धा पृथ्वीराज, जो कई एक युद्धों में मुसलमानों को पराजित कर चुका था, अंत में भोग-विलास में डूब गया, और आपको आश्चर्य होगा

कि अंतिम बार जब वह युद्धक्षेत्र को गया, तो उसकी कमर उसकी रानी ने कसी थी। परिणाम क्या हुआ? युद्धक्षेत्र मे मुँह काला करके असफल लौट आया। नैपोलियन, जिसके साहस और वीरता की धाक सारे संसार में जम गई थी, जब वाटरलू के समरांगण को जाने लगा, तो उसके पहले शाम को वह अपने आपको एक अपवित्र चाह में गिरा चुका था। परिणाम स्पष्ट है कि बड़ी विकट हार हुई। अभिमन्यु, कुरुक्षेत्र के युद्ध का प्रसिद्ध योद्धा, जिस दिन मारा गया, उससे पहले सायंकाल को वह अपनी नवीन प्रिय पत्नी के पास गया था, और वीर्य गिरा कर आया था। स्मरण रक्खो, अपवित्र वस्तु में कुछ आनंद नहीं है। जिस प्रकार गुलाब का फूल कैसा सुगंधित होता है, किंतु उसमें शहद की मक्खी भी रहती है। जब आपने उसको नाक में लगाया, उसने नाक की नोक पर डसा। इस प्रकार संसार की कान्ति और कटाक्ष तथा सांसारिक वस्तुएँ बड़ी चित्ताकर्षक होती हैं और बहुत ही भली जान पड़ती हैं, और वे आपके मनों को लुभाती हैं। किंतु चखकर देख लो इनमें एक आध्यात्मिक विष है, जो आपको उन्नति करने से वंचित रक्खेगा। ये अनुचित अनुराग, ये अनुचित कामप्रियता, ये अनुचित सतीत्व का भंग करना, ये सब उस गुलाब के फूल के तद्वत् हैं, जिनमें शहद की मक्खी है और जो आपके नाक की नोक पर काट लेती है। अतः नियम यह है कि यदि आपको ये सांसारिक बातें नहीं हिला सकतीं, तो आप संसार को अवश्य हिला सकते हैं।

तीसरी शर्त सफलता की एक आध्यात्मिक शर्त है। एक बादशाह की कथा है कि उसने एक कमरे में एक सींग लटका रक्खा था और उस सींग की खोल में पानी भरा था। बादशाह

ने यह विज्ञापन दे रक्खा था कि जो कोई इस सींग का सब पानी पी ले और सींग ख़ाली कर दे तो उसको वह अपना समस्त राज्य दे देगा। बहुत से लोग आये और उन्होंने पानी पिया, किन्तु कोई भी उसको ख़ाली न कर सका। वह सींग देखने में तो ज़रा सा जान पड़ता था, किन्तु उसका सम्बन्ध समुद्र से था और यही कारण था कि वह ख़ाली नहीं होता था। इस तरह पर यद्यपि आपके शरीर ज़रा-ज़रा से हैं, किन्तु उनका गुप्त सम्बन्ध उन समुद्रों के समुद्र ईश्वर स्वरूप के साथ है। जो व्यक्ति इस सम्बन्ध को जगाये रखता है, और इसको स्थिर रखता है, उसकी शक्ति अनन्त है। आप सिवाय इसके और कुछ नहीं हो। जब यह मामला है, तो परमेश्वर तो सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, अतः आपके अन्तर्हृदय की तह में जो ख़्याल है, वह सत्य होना चाहिए, और उस ख़्याल को सदैव विजय है। यथाः—

दौलत ग़ुलामे-मन शुदो. इक़बाल चाकरम।

अर्थ—दौलत मेरी ग़ुलाम और इक़बाल (विभूति) मेरी सेविका हो गई है।

अब राम कुछ उदाहरण इतिहास से देगा, जिससे सिद्ध होगा कि यह सिद्धान्त बिलकुल ठीक है। सिंहविक्रम महाराजा रणजीतसिंह अपनी सेना लिये हुए अटक नदी के निकट पड़ा हुआ था। उस पार शत्रु की सेना थी। रात का समय था। अन्धकार छाया हुआ था, न वहाँ पर कोई नाव थी जिसके द्वारा पार उतरा जाय, और न वहाँ कोई दूसरा साधन मालूम होता था। अब बड़ी कठिनता थी कि क्या किया जाय। सिपाहियों ने रणजीतसिंहजी से जाकर अपनी कठिनाइयाँ वर्णन कीं। वह तो जैसा श्रीकृष्णजी ने कहा है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

अर्थ—"हे अर्जुन, तू सुख और दुःख तथा हानि और लाभ को सम करके एवं हार जीत का विचार न करके युद्ध के लिये खड़ा हो। ऐसा करने से तू पाप को प्राप्त नहीं होगा।" यदि तू युद्ध नहीं करेगा, तो महापाप का भागी होगा। इस विचार में मग्न था। उसको न विजय की प्रसन्नता थी और न पराजय का शोक था। वह तो इस ख्याल में मस्त होकर अपना धर्म पालन करता था। उसने अपने सिपाहियों से कहा:—

जाके मन में अटक है, वाको अटक यहाँ;
जाके मन में अटक ना, वाको अटक कहाँ?

यह सुनते ही सेना फाँद पड़ी और उस पार पहुँच गई। उसको देखकर शत्रु का साहस टूट गया कि जब ऐसे विशाल अगम नद से ये लोग बिना किसी नौका आदि के आन की आन में पार उतर आए हैं, तो इनका सामना करना असम्भव है, शत्रु भाग खड़े हुए, और क्षेत्र रणजीतसिंहजी के हाथ में रहा।

इसी तरह एक बार हज़रत मोहम्मद साहब एक मुहिम (युद्ध) पर जाने के लिये बड़ी तैयारी कर रहे थे। किसी ने कहा कि आप इतनी तैयारी कर रहे हैं, किन्तु यदि आपकी हार हुई, तो कितनी लज्जा होगी और इसके साथ ही आपका साहस भी टूट जायगा। इस पर वे खिलखिलाकर हँस पड़े और कहने लगे—"परिश्रम करना मेरा काम है, न कि सफलता चाहना। मैं तो अल्लाह के हुक्म से काम कर रहा हूँ, अपना फ़र्ज़ अदा कर रहा हूँ, इससे अधिक मुझको कुछ संबंध नहीं है।" फ्रांस और जर्मनी की लड़ाई में महाराज फ्रैडरिक की

बिलकुल हार हो गई थी। शत्रु के सिपाही उसके दुर्ग में घुस गये थे, और रंगरलियाँ मचा रहे थे; किंतु फ्रैडरिक को अपने पक्ष में भगवान् के होने का निश्चय था। अतः उसने साहस को हाथ से न जाने दिया। उसने अपने लोगों को जमा किया और उनमें से कुछ को एक ओर भेज दिया कि तुम टीले पर जाकर खड़े हो, कुछ को दूसरी ओर भेज दिया, इसी प्रकार चारों ओर भेज दिया। इसके बाद स्वयं साहस पूर्ण हुए बेधड़क दुर्ग के भीतर घुस गया और सिपाहियों से बोला कि तुम लोग हथियार रख दो। उन्होंने प्रश्न किया कि क्यों? उसने कहा, तुम नहीं देखते हो कि मेरी सेना सब ओर से आ रही है और तुम घेरे गए हो। यह देखकर वे लोग भयभीत हो गये। और सब हथियार उसके सामने रख दिये। यदि आपका हृदय ईमान से भरा है, तो एक शत्रु क्या, सारा संसार आपके सम्मुख हथियार डाल देगा। यही हृदय का उत्साह है, जिसने विकट हार को पूर्ण विजय में परिवर्तित कर दिया।

सारी ख़ुदाई इक तरफ़, फ़ज़्ले-इलाही इक तरफ़;
न महँगे पर न सस्ते पर, नहीं मौक़ूफ़ ग़ल्ले पर;
फ़तेह तो बस उसी की है, ख़ुदा है जिसके पल्ले पर।

हाथी और सिंह की देह में कितना अन्तर है! किंतु देखो, सिंह के उत्साह और साहस के कारण हाथी को अपने शरीर के भारी होने पर भी सामना करना कठिन हो जाता है। हाथी को अपनी शक्ति पर बिलकुल भरोसा नहीं होता। वह सदैव झुण्डों में रहता है, क्योंकि उसको सन्देह रहता है कि अकेला पाकर कोई उसको खा न जाय। सिंह यद्यपि तन में उससे छोटा है, किंतु साहस उसमें भरा हुआ है। यही कारण है कि हाथी उसके सामने खड़ा नहीं हो सकता। सिंह अपने भीतरवाले ईश्वर

अर्थात् आत्मा को मार नहीं रहा है, वरन् उसको व्यावहारिक रूप से स्पष्ट करता है।

चीन में एक लड़का था। उसके माँ-बाप अत्यन्त दरिद्र थे। वह यहाँ तक दरिद्र था कि पढ़ने के लिये उसे तेल तक नहीं मिलता था, किंतु उसको पढ़ने का शौक़ था। वह बहुत से जुगुनुओं को एकत्र करके एक कपड़े में बाँधता था और जब वे चमकते थे, उनके प्रकाश से पढ़ लेता था। लोगों ने उससे कहा कि तुम यह क्या भद्दी चेष्टा करते हो, ऐसा परिश्रम किस लिए करते हो, क्या बादशाह के वजीर तुम्हीं होगे? अहाहा! उसने क्या उत्तर दिया, जिसको सुनकर सबका चित्त प्रसन्न हो गया। कहता है, मेरे हृदय में ऐसी उमंगें उठती हैं, जिससे आशा बँधती है कि मैं वजीर बनूँगा। अन्त में वह लड़का चीन का वजीर हो ही गया।

प्रायः लोग कहते हैं कि हम अमुक काम क्योंकर करें? अरे भाई, आत्महत्या या ईश्वर-हत्या क्यों कर रहा है। तू शरीर नहीं है, तू स्वयं ही अनंत है फिर किस प्रकार क्या पूछता है। तुमको क्या ज्ञात नहीं कि जलस्थित-विद्या (Hydro Statics) का एक सिद्धान्त है, जिससे समस्त सागर के पानी को एक ज़रा सा पानी रोक सकता है। इस प्रकार एक मनुष्य सारे संसार को रोक सकता है, यदि वह अपने भीतर के ईश्वरत्व पर खड़ा हो जाय। कारणों का कारण तो तू ही है, फिर सामान या साधन क्या ढूँढ़ता है?

स्काटलैंड का एक बच्चा वहाँ के अनाथालय से भागकर लंडन चला आया। लंडन में संयोग से वह लार्ड मेयर के बाग़ में पहुँच गया और वहाँ खेलने लगा। संयोग से उधर से एक बिल्ली निकली। बच्चे ने उसकी दुम पकड़ ली

और उससे बातें करने लगा। इतने में निकट से घंटे की ध्वनि सुनाई दी, जो लगातार बज रहा था। बस, अब वह बच्चा बिल्ली से बात करने लगा और कहने लगा:—

What does the mad bell say?
Ton ! Ton !! Ton !!! Whittington, Whittington,
Lord Mayor of London!

अर्थ:—यह पगली घंटी क्या कहती है ? टन ! टन !! टन!!! ह्विट्टिङ्गटन ह्विट्टिङ्गटन, लार्ड मेयर आफ़ लंडन !

वह अपनी इसी बातचीत में था कि संयोग से लार्ड मेयर उधर से आ निकला। उसने सुना कि कोई व्यक्ति बात कर रहा है। वहाँ आकर यह हाल देखा। उसने लड़के से पूछा कि तू क्या कर रहा है ? उसने उत्तर दिया, लार्ड मेयर आफ़ लंडन। लार्ड मेयर बहुत प्रसन्न हुए। उसको अपने यहाँ ले गये, और उसको शिक्षा के लिये स्कूल में भेजा। वहाँ उसने अत्यन्त परिश्रम के साथ पढ़ा, और खूब विद्या प्राप्त की। धीरे-धीरे वह एक दिन लॉर्ड मेयर आफ़ लंडन हो ही गया।

एक कवि था। अपनी विद्या में प्रवीण था। उसने बहुत से पद्य कहे और बादशाह के सम्मुख ले गया। बादशाह उनको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और खूब पारितोषिक दिया। बेगमों ने भी उसकी वाणी को पसंद किया, और जब बादशाह महल में आया, तो उनसे इच्छा प्रकाट की कि कवि कहीं महल के निकट ही रक्खा जाय। दूसरे दिन बादशाह ने कवि से पूछा—"कहाँ रहते हो ?" वह मतलब समझ गया, और बादशाह से बोला—"मैं तो अंधा हूँ।" यह सुनकर बादशाह ने कहा—"जब यह अंधा है, तो कोई हर्ज नहीं है, इसको महल के निकट एक कमरे में ठहरा

दिया जाय।" निदान, ऐसा ही किया गया। अब वह वहाँ रहने लगा, और नौकरों-चाकरों को दिक़ करने लगा। एक दिन लौंडी से कहा कि लोटा उठा दो, हमको आवश्यकता है। उसने कहा, यहाँ लोटा कहाँ है? कहने लगा—उठा दो। उसने फिर वही उत्तर दिया। निदान, बहुत कहा-सुनी के बाद बोल उठा, अरी! वह क्या पड़ा है, क्यों नहीं उठा देती? बस, लौंडी दौड़ी हुई महलों में गई और बेगमात से कहा-"यह मुआ तो देखता है, अंधा नहीं है। यह मुआ हम सबको बराबर घूरता है।" तत्काल बादशाह को ख़बर की गई। परिणाम यह हुआ कि दरबार से निकाला गया, और फिर वह सचमुच अंधा भी हो गया।

आप कहते हैं, सामान नहीं हैं, कैसे काम करें? यह सब संकल्प का खेल है। जब आपके भीतर निश्चय की शक्ति आ जायगी, तो सब सामान अपने आप आपके सामने आ जायँगे। देवता (प्रकृति की शक्तियाँ) आपके लिये अपना स्वभाव बदल देंगे। ऊपर जो उदाहरण वर्णन किये गये हैं, उनसे स्पष्ट सिद्ध है कि अच्छे ख़यालवाले अच्छे होंगे, किंतु बुरे मनोरथ माँगनेवाले बुरे होंगे। जैसा ख़याल करोगे, वैसे ही हो जाओगे।

गर दरे-दिल तो गुल गुज़रद गुल बाशी;
वर बुलबुले-बेक़रार बुलबुल बाशी।
सौदाये-बला रंजो-बला मी आरद;
अंदेशा-ए कुल ऐशा कुनी कुल बाशी।

अर्थ—यदि तेरे चित्त में पुष्प (प्यारे) का ख़्याल होगा, तो तू पुष्प (प्यारा) हो जायगा, और यदि चञ्चल बुलबुल का, तो व्याकुल बुलबुल हो जायगा। स्मरण रहे कि दुःखों

का ख्याल करनेवाला दुःख और कष्ट अपने ऊपर ले आता है, और सबका शुभचिन्तक स्वयं सब हो जाता है।

प्रत्येक प्रार्थना सुनी जाती है। जो प्रार्थना दिल से निकलती है, वही स्वीकृत होती है। इसका यह तात्पर्य है कि जैसा आपका संकल्प होगा, उसको आपके भीतर का सच्चा बल पूरा कर देगा। आपमें वह शक्ति विद्यमान् है, जिससे आप देवताओं की बराबरी कर सकते हैं। देवता के अर्थ प्रकृति की शक्तियों के हैं। यदि आप वेद के अनुसार चलें, तो आप देवताओं तक पहुँच सकते हैं। आप अपने विश्वास और निश्चय के बल से प्रकृति की शक्तियों को खींचकर ला सकते हैं, और उनसे बराबरी कर सकते हैं। किंतु आपने उन साधनों को भुला दिया है। जब तक उन साधनों को आचरण में लाते थे, तब तक उस प्रकार के विचार हृदय में खचित थे, उस समय वैसे ही परिणाम निकलते थे। किंतु जब से उन उपायों को छोड़ा, और खराब विचारों ने दिल में जगह पकड़ी, रंगत भी बदल गई। जब हिन्दुओं में यह विचार उत्पन्न हुआः—

"हमको नौकर राखो जी, हमको नौकर राखो जी।
मैं ग़ुलाम, मैं ग़ुलाम, मैं ग़ुलाम तेरा ;
तू दीवान, तू दीवान, तू दीवान मेरा।"

और हिन्दुओं में एक गुण विशेष यह है कि वे सदैव सच्चे होते हैं। अतः उनकी वह स्वाभाविक सच्चाई उक्त विचार पर लगाई गई, और उनका क्योंकि यह हार्दिक विचार था, इसलिये उनकी यह मनोकामना पूरी हुई। और वे इस तरह से विदेशियों के गुलाम (दास) हो गये। स्पष्ट है कि जैसा ख्याल करोगे, वैसा पाओगे। हमें अपने ख्यालों को सुधारना चाहिए। बुद्ध भगवान् ने भी यही सिखाया है। अतः न अपने

सम्बन्ध में और न किसी अन्य के संबंध में अपने हृदय में मलिन विचारों को आने दो। भीतर और बाहर ईश्वर ही ईश्वर को देखो। मोहम्मद साहब के हृदय में यह बात समा गई थी, इस कारण उन्होंने सिखाया था कि (ला इलाह इल्लिल्ला) "नहीं है कुछ सिवाय परमेश्वर के।" हज़रत ईसा मसीह की नस-नस में भी यही विचार दौड़ रहा था। अतः उन्होंने भी यही कहा कि "मैं और मेरा बाप (ईश्वर) एक ही है (I and my father are one.)।" अब उसको लोग समझें या न समझें; अगर असल बात यही है। जब हज़रत मोहम्मद साहब के दिल में यक़ीन आ गया, तो उन्होंने कहा कि अगर सूर्य मेरी दाईं ओर और चाँद मेरी बाईं ओर आ आकर धमकाने लगें कि पीछे हट जाओ, तब भी मैं पीछे न हटूँगा। एक आदमी जो जंगलों का रहनेवाला था, उसके हृदय में इस विश्वास की आग भड़क उठी, और उसने अरब के मरुस्थल में इसके काले रेत के दानों को भड़काया। वे ज़र्रे बारूद के छर्रे बन गए, और योरप वा अफ़रीका के पश्चिमी सिरे से लेकर एशिया के पूर्वी सिरे तक एक शताब्दी के भीतर फैल गये। यह शक्ति है आत्मबल की, यह शक्ति है विश्वास की, यह शक्ति है निश्चय (यक़ीन) की। इस पर भी कहते हो कि सामान की आवश्यकता है? सामानों के सामान आप स्वयं हो। इस विचार को ब्रह्मविद्या कहते हैं।

जिस प्रकार एक सुन्दर बालक चेचक के रोग से बिलकुल कुरूप हो जाता है, और उसकी जान पर बन आती है, और उसको कुछ लाभ गाय के थन के लिंफ़ (lymph) का टीका लगाने से होता है; इसी तरह हिंदू जाति को अविद्या की चेचक निकली है, और वह कुरूप होती जाती है, उसका अंत भी निकट

जान पड़ता है, अतः उसको भी टीका लगाने की आवश्यकता है। इस टीके के लिये लिंफ़ कहाँ से आवेगा ? वह भी गौ के थन से लिया जायगा। गौ के अर्थ 'उपनिषद्' के हैं। और वह लिंफ़ गौ रूपी उपनिषद् से लिया जायगा। मतलब यह है कि ब्रह्मविद्या को उपनिषदों से सीखो, और उस पर आचरण करो, तो यह अविद्या की चेचक तत्काल अच्छी हो जायगी।

लोग कहते हैं कि इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि जो जाति एक बार उन्नति करके अवनति को प्राप्त हुई, फिर वह दुबारा उन्नति नहीं करती। यह ख़्याल तुच्छ है। आपका इतिहास क्या है? वही एक हज़ार वर्ष का इतिहास, और उस पर यह अभिमान। अरे भाई! वह तो एक युग का भी पूर्ण इतिहास नहीं है। प्राकृतिक विकास का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, किसी न किसी रूप में वह विद्यमान रहती है। कहते हैं किः—

"हर शाख़ रंग आमेज़ी दर फ़स्ले-ख़िज़ाँ अंदाख़्ता।"

अर्थः—प्रत्येक शाख (टहनी) पतझड़ की ऋतु में फली-फूली है। कैसा आश्चर्य है!

फिर देखो, प्रकृति आपको बताती है कि तारे पूर्व से पश्चिम को जाते हैं, और फिर वहाँ से पूर्व को लौट आते हैं। यही दौर या चक्र है। इसी प्रकार सौभाग्य का तारा पूर्व से पश्चिम को गया, और फिर वहाँ से पूर्व को लौटा आ रहा है। इतिहास इसकी साक्षी देता है। देखो, एक युग था, जब भारतवर्ष का तारा अभ्युदय पर था, वहाँ से पश्चिम को चला, फ़ारस में आया। उसके पश्चात् आस्ट्रिया आदि की बारी आई। वहाँ से यूनान पहुँचा। यूनान को छोड़कर रूम गया। रूम के बाद स्पेन आदि की बारी आई। फिर इँगलैंड

पर कृपादृष्टि हुई। वहाँ से अमेरिका गया। इस समय अमेरिका का पश्चिमी भाग कैलीफोर्निया अत्यंत उन्नति पर है। वहाँ से जापान में आया। फिर अब कैसे कह सकते हैं कि भारतवर्ष वंचित रहेगा, इसकी बारी नहीं आयगी? अवश्य आयेगी, अवश्य आयेगी।

ॐ ॐ ॐ

आनन्द! आनन्द!! आनन्द!!!

सुधार

[जनवरी १९०२ में भारत-धर्म-महामण्डल भवन, मथुरा में स्वामी राम का व्याख्यान, श्रीनारायण स्वामी द्वारा लिखित नोटों से ।]

आजकल संसार में परोपकार का बड़ा कोलाहल सुनाई देता है। यह शब्द प्रत्येक कान में सुनाई देते ही हृदय में सहानुभूति का जोश उत्पन्न करता है, और सुननेवालों के मन में सुधार करने का विचार उत्पन्न कर देता है। किन्तु आश्चर्य की बात है, कि परोपकार के यथार्थ अर्थ से तो लोग जानकारी नहीं प्राप्त करते, केवल वाह्य 'हाहा-हूहू' की लेक्चरबाजी में लग जाते हैं। इसीलिए परोपकार के वास्तविक अर्थ न समझने से और उस पर आचरण (अमल) न करने से सुधारक महाशय से न तो संसार का पूरा-पूरा उद्धार होता है, और न उसे स्वयं कुछ लाभ प्राप्त होता है। अतः औरों का सुधार करने से पहले सुधार के इच्छुक को सुधार के अर्थ और साधनों से जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। अँगरेजों के यहाँ आजकल यह उक्ति रिवाज पकड़ती जाती है कि "पहले अपने को किसी चीज के अधिकारी बनाओ, फिर उसके प्राप्त करने की इच्छा करो (First deserve & then desire)।" किंतु वेदांत का इस विषय से सम्बन्ध नहीं। वेदांत में तो यह सिद्धांत अनादि काल से चला आता है कि "अपने को किसी वस्तु के अधिकारी तो निस्सन्देह बनाओ, किंतु उसकी प्राप्ति की इच्छा न करो (Deserve only & need not desire)।" क्योंकि वेदांत पुकार-पुकारकर कहता है कि जिन वस्तुओं का आपने अपने को अधिकारी बनाया

है, अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् वे वस्तुएँ आपके पास बिना किसी प्रकार की इच्छा के किसी न किसी के द्वारा अवश्य चली आयेंगी। अधिकारी बनने या होने से कोई और अभिप्राय नहीं है; वरन् इस प्रबन्ध का स्पष्ट तात्पर्य और उद्देश्य यह है कि जिस प्रकार से एक मनुष्य छोटे-छोटे पदों से उन्नति पाता हुआ एक उच्च पद पर पहुँच कर राजा का पद पा लेता है, तो उस समय वह अपने राज्य की समस्त सम्पत्ति, महल और धन-धरती के पाने का अधिकारी हो जाता है। अब वह इन वस्तुओं के पाने की इच्छा प्रकट करे या न करे, उसके सिंहासनासीन होने पर वस्तुएँ उसकी सेवा करने को अपने आप उसके पास चली आती हैं, वरन् उस समय उसका इच्छा करना अपने आपको छोटा बनाना है, और अपने को धब्बा लगाना है। यह एक कहानी है कि एक महात्मा इस बात के अधिकारी हो गये थे कि उनके निकट सांसारिक पदार्थ आनकर उनकी नित्यप्रति सेवा करें, किंतु एक अवसर पर एक व्यक्ति जब उनके लिये बताशों का थाल लाया, तो महात्माजी ने बताशे लेने की इच्छा करके अपने मुखारविंद से यह उच्चारण किया कि दो बताशे हमको दे दो। इस पर थाल लानेवाले ने दो बताशे तो महात्माजी को दे दिए, किन्तु शेष बताशों को उन्हें लालची समझने के कारण वहाँ रखना उचित न समझकर वह व्यक्ति थाल लौटा ले गया। इस प्रकार महात्माजी शेष बताशों से भी वंचित रहे और इच्छा प्रकट करने के कारण थाल लानेवाले की दृष्टि में भी कम उतरे। इसी तरह अधिकारी होने पर भी अधिकार-योग्य वस्तु की इच्छा प्रकट करना अपने अधिकारों को खोना और अपनी इच्छा को बट्टा लगाना होता है। भगवन् ! यदि आप अपने आपको समस्त वस्तुओं का

मालिक और अधिकारी बनाना चाहते हैं, तो उठो, अपने स्वरूप में झण्डे गाड़ो, अपने असली स्वरूप में लीन हो जाओ, और अपने असली स्वरूप में मस्त होकर सारे संसार के ईश्वर और मालिक बन जाओ। आपका अपने स्वरूप में लीन होना ही आपको सारे संसार का सम्राट बना देगा। यह सम्राट्-पद केवल इस संसार का ही नहीं प्राप्त होगा, वरन् आपका अपने स्वरूप में निवास करना आपको समस्त लोक और परलोक का सम्राट् बना देगा। अपने इस वास्तविक साम्राज्य का सिंहासन सँभालने पर आप समस्त धरती और आकाश अर्थात् लोक और परलोक की वस्तुओं के स्वामी और अधिकारी हो जाओगे। केवल असली साम्राज्य पाने की आवश्यकता है। संसार के पदार्थ आदि तो अपने आप आपकी सेवा करने को तत्पर हो जायँगे। आपको उस समय इच्छा करने की भी आवश्यकता न होगी। उठो! उठो!! उठो!!! अपने स्वरूप में डेरे लगाओ, और विराट् स्वरूप के सिंहासन पर आरूढ़ हो, फिर आपके केवल एक संकेत से भी सारे संसार के काम पूरे होते चले जायँगे। परोपकार का उपाय केवल 'हाह-हूहू' नहीं, वरन् सर्वोत्तम परोपकार अपने आत्मा में लीन होना ही है। जैसे विज्ञान के मतानुसार वायु हल्की होकर जब ऊपर को उठती है और अपना प्रथम स्थान छोड़ देती है, तो इधर-उधर की चारों ओर की भारी और ठंढी हवा हल्की हवा की खाली जगह घेर लेती हैं, अर्थात् चारों ओर की हवा पहली हवा के हल्का होकर उड़ जाने पर एक एक श्रेणी अपने आप उन्नति करती जाती है, इसी प्रकार एक महात्मा के ब्रह्मनिष्ठ होने अर्थात् अपने असली स्वरूप में लीन हो जाने पर उपरि वर्णित वायु की भाँति शेष चारों

वर्णों के लोग विना किसी प्रकार की इच्छा और प्रयत्न के महात्मा की खाली की हुई जगह को घेरने के लिये अपने अपने दर्जों से एक-एक दर्जा अपने आप उन्नति कर जाते हैं। अतएव अपने आपको अपने स्वरूप में लीन करना अर्थात् निज स्वरूप में निमग्न होना ही परोपकार करना है। तात्पर्य यह कि आपके मन का अपने सूर्य रूपी आत्मा की किरणों के द्वारा अहंकार रूपी भारी बोझ से शून्य और हल्का होकर अपने स्वरूप में उड़ जाना, अर्थात् लीन हो जाना, ही संसार के और पुरुषों का सुधारना है, नहीं तो सुधारक महाशय या सुधार के इच्छुक जितना ही अपने वास्तविक स्वरूप से नीचे रहेंगे, उतना ही शेष मनुष्य निचले दर्जों पर रहेंगे और परोपकार करने के अर्थ का मिथ्या वरन् उल्टा व्यवहार करते रहेंगे; क्योंकि अपने स्वरूप में अवस्थान न करना ही दूसरों का परोपकार न करना है, वरन् अपने आपको नीचे गिराए रखना है। इसलिये ऐ सुधार के इच्छुको! और ऐ संसार का उद्धार करनेवालो! यदि संसार का उद्धार करना चाहते हो, तो उठो, अपने स्वरूप में लीन हो जाओ, शेष सब लोग अपने आप उन्नति कर लेंगे, या यों कहो कि शेष सब लोगों का विना आपकी इच्छा और प्रयत्न के अपने आप भला हो जायगा; और आपमें भी जब अपने स्वरूप में निष्ठा होगी, तो सारे संसार को हिला देने की शक्ति आ जायगी, अर्थात् अनन्त स्वरूप से अभेद होने के कारण अनन्त शक्ति भी आपमें भर जायगी। इस प्रकार आपका केवल राजगद्दी सँभालना ही सारे काम-धन्धे को ठीक कर देता है, क्योंकि विना असली साम्राज्य के सिंहासन पर स्थित हुए साम्राज्य के काम पूरे नहीं होते, अतः अपने स्वरूप में लीन होना परोपकार के लिये मुख्य

उपाय समझना चाहिए, अपने अनन्त स्वरूप से मन को अभेद करने से ही अनन्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी। जैसे एक नमक की डली यदि खाली गिलास में डाली जाय, तो एक परिच्छिन्न स्थान घेरती है, और जब पानी से भरे हुए गिलास में डाली जाय, तो पानी में घुल जाने से (अर्थात् जल के साथ मिल जाने से) वह डली अपनी परिच्छिन्न जगह छोड़कर गिलास के समस्त पानी में फैल जाती है और समस्त जल में नमकीन स्वाद देने की शक्ति रखती है, या यों कहा जाय कि जितना ही नमक की डली अपने परिच्छिन्न स्थान, नाम और रूप को छोड़ती जाती है, और पानी में समाती जाती है, उसमें उतना ही स्वाद फैलाने की शक्ति बढ़ती जाती है; इसी प्रकार मन यद्यपि परिच्छिन्न शक्ति का खंड माना गया है, किंतु जितना ही वह अपने परिच्छिन्न स्थान, नाम और रूप को छोड़-कर अपने स्वरूप के अनन्त सागर से अभेद होता है, उतना ही उसकी अनन्त (अपरिच्छिन्न) शक्तियाँ फैलती भी दिखाई देती हैं, अर्थात् उतना ही मन अपरिच्छिन्न शक्तियाँ प्रकट करने का बल भी उत्पन्न करता चला जाता है। इसी प्रकार से भगवन्! यदि आप अपनी अनन्त (अपरिच्छिन्न) शक्तियाँ प्रकट किया चाहते हैं, और उन अपरिच्छिन्न शक्तियों से संसार का उद्धार किया चाहते हैं, तो मन को कैवल्य-स्वरूप में इस प्रकार लीन कर दो कि जैसे मजनूँ के प्रेम के सम्बन्ध में एक कवि ने कहा है—

ख़ूँ रगे-मजनूँ से निकला फ़स्द लैला की जो ली;
इश्क़ में तासीर है पर जज़्बे-कामिल चाहिए।

अर्थात् मजनूँ लैला के साथ ऐसा अभेद हुआ था कि लैला और मजनूँ में बिलकुल अन्तर न रहा, वरन् लैला की फ़स्द लेने

पर भी ख़ून मजनूँ की नस से निकला। जितना ही आप अपने को परिच्छिन्न करते जाओगे, अर्थात् नमक की डली की भाँति परिमित शरीर में मन को घेरे रक्खोगे, उतना ही आप अपने को असमर्थ और शक्ति-हीन बनाते जाओगे। अतः मन को शरीर के ख़्याल से दूर हटाकर आनन्दघन रूपी समुद्र में लीन करना ही समस्त अनन्त शक्तियाँ प्राप्त कर लेना है। जब इसी प्रकार से व्यावहारिक रीति पर मनुष्य तन्मय (यूयं वयं, वयं यूयं) हो जाता है, अर्थात् जिस समय वेदांत-रूप हो जाता है, तो पूर्व संकल्प नमक की डली की तरह परिमित स्थान को छोड़कर अपने अनन्त स्वरूप में समा जाते हैं, और इस प्रकार सबके साथ अभेद और प्रेममय होने पर समस्त मनोकामनायें विना इच्छा और प्रयत्न के पूरी हो जाती हैं। अपने आत्मा में लीन होने के लिये सुधारक महाशय को पहली आवश्यकता हृदय-रूपी पर्दे को ज्ञान-रूपी तेल से तर करने और स्वच्छ बनाने की है। जैसे काग़ज़ की तह यदि लैम्प की लाट के आगे रक्खी जाय, तो लाट इतना प्रकाश नहीं करती, जितना तेल से भिगोई हुई काग़ज़ की तह कर सकती है। (अर्थात् काग़ज़ की तह विना तेल से भिगोने के अच्छी तरह दीपक का प्रकाश प्रकट नहीं कर सकती, क्योंकि तेल के साथ भिगोने से इसकी तह स्वच्छ और हलकी हो जाती है)। इसी तरह हृदय को ज्ञान रूपी तेल से भिगोये विना आत्म-रूपी ज्योति का प्रकाश बाहर भली भाँति प्रकट नहीं हो सकता। अतः ज्योति को प्रकट करने के निमित्त हृदय-रूपी पर्दे को ज्ञान-रूपी तेल से तर करने और उससे उसको स्वच्छ बनाने की अत्यंत आवश्यकता है।

विकासवाद की दृष्टि से भी मनुष्य को समस्त सृष्टि पर

श्रेष्ठता दी गई है। इसका अधिकांश कारण केवल यही है कि वह चेतन-शक्ति, जो वेदान्त में ज्योति के नाम से पुकारी जाती है, जड़ जगत् में प्रकट होना चाहती है, किंतु जड़ जगत् में पर्दा अत्यंत मोटा होने से उस (ज्योति) का प्रकाश वहाँ इतना प्रकट नहीं होता, जितना कि वनस्पति जगत् में से होता है। इसलिये वनस्पति जगत् की श्रेणी जड़ जगत् से ऊँची मानी गई है। और वनस्पति में भी जब वह चेतन-शक्ति अपने आपको प्रकट किया चहती है, तो यद्यपि जड़ जगत् की अपेक्षा पर्दा वहाँ ज़रा कम स्थूल होता है, तो भी कुछ स्थूल होने के कारण वहाँ वह इतना प्रकट नहीं होती, जितना कि प्राणी (चेतन) जगत् में होती है, इसलिये प्राणियों की श्रेणी जड़ और वनस्पति से बढ़कर मानी गई है। फिर पशुओं में जब वह प्रकाशस्वरूप आत्मा अपना प्रकाश बाहर फैलाना चाहता है, यद्यपि उनमें जड़ और वनस्पति की अपेक्षा पर्दा और भी कम स्थूल होता है, तथापि स्थूल होने के कारण उनमें से ज्योतिर्मय सूर्य का प्रकाश उतना भासमान नहीं होता, जितना कि मनुष्य में हो सकता है, अतः मनुष्यों का दर्जा अन्य समस्त सृष्टि अर्थात् जड़ वनस्पति और प्राणी-सृष्टि से उत्तम माना गया है। किन्तु विकासवाद केवल यहाँ तक ही अन्त नहीं करता, वरन् मनुष्यों में भी आगे बहुत-सी श्रेणियाँ हैं; विशेषतः दो दर्जे मनुष्यों के बतलाए जाते हैं। इन दर्जों के आगे कोई और दर्जा विकासवाद ने आज तक न तो बताया, न स्थिर किया है। मनुष्य को दो बड़ी श्रेणियों में विभक्त किया गया है—एक ज्ञानी की, दूसरी अज्ञानी की। ज्ञानी वह जिसका अन्तःकरण रूपी पर्दा अत्यन्त सूक्ष्म और स्वच्छ है, और अज्ञानी वह जिसका अन्तःकरण रूपी पर्दा स्थूल और मलिन

है—जैसे ग्लोबदार लैम्प में दो चिमनियाँ होती हैं, एक अत्यन्त निर्मल, स्वच्छ और पतली होती है कि जिसके भीतर से लैम्प का प्रकाश निकलकर समस्त मनुष्यों की आंखें चौंधिया देता है, दूसरी निर्मल और अल्प स्वच्छ तो होती है, मगर पहली की अपेक्षा थोड़ी मोटी और धुँधली होती है, जिसमें से लैम्प का प्रकाश बाहर प्रकट तो होता है, मगर पहले की अपेक्षा बहुत ही हलका होता है। इस तरह ज्ञानी का अन्तःकरण उस अत्यन्त महीन, निर्मल और स्वच्छ चिमनी के समान होता है, जिसके भीतर से आत्मदेव की ज्योति ऐसे वेग से बाहर प्रकाशित होती है कि बीच में अन्तःकरण रूपी पर्दा देखने में ही नहीं आता, वरन् असली ज्योति ही आंखें मारती मालूम देती है; मगर अज्ञानी का अन्तःकरण उस ग्लोब के समान होता है कि जिसके भीतर तो प्रकाश उसी प्रकार ज़ोर का होता है, जैसा पहली चिमनी के भीतर था, मगर बाहर इस ज़ोर से प्रकट नहीं होता, जैसे पहली चिमनी से फूट-फूटकर निकलता है। अर्थात् जिसमें से पहले की अपेक्षा प्रकाश हलका और धुँधला-सा निकलता है, और ज्योति रूपी लाट भी धुँधला पर्दा होने के कारण आंखें मारती कम दिखाई देती है। इस तरह से, हे भगवन्! उस सूर्यों के सूर्य के तेज को बाहर प्रकट करने के लिये सिवाय अन्तःकरण को शुद्ध करने के और कोई साधन वा उपाय नहीं है। अन्तः-करण जब शुद्ध हो जायेगा, तो फिर चाहे आत्म-ज्योति प्रकाश को बाहर प्रकट करने का प्रयत्न करे अथवा न करे, ज्योति बिना आपके प्रयत्न के आपके भीतर से फूट-फूटकर बाहर निकलेगी। इस स्वच्छ अन्तःकरण में से प्रकाश निकल कर अन्य अज्ञानी मनुष्यों के अन्तःकरणों को भी, जो चिमनी के ऊपर

के ग्लोब के समान है, प्रकाशमान कर देगा। इसलिये आपका काम केवल अपने अन्तःकारण को ही अति पतली चिमनी के समान साफ़ और स्वच्छ बना देना है। जब अन्तःकरण स्वत्र निर्मल हो जायगा, तो उससे प्रकाश निकल कर अन्य अज्ञानी पुरुषों के मनों को भी प्रकाशित कर देगा। इसलिये हे भगवन्! पहले अपने अन्तःकरण को पतली और निर्मल, स्वच्छ चिमनी के समान बनाइए। इस प्रकार आपका अपना हृदय शुद्ध करना ही दूसरों का उपकार करना है। जिस समय अन्तःकरण बिल्लौर के समान स्वच्छ हो जायगा, तो ज्ञान-रूपी प्रकाश बिना आपके प्रयत्न और खोज के भीतर से प्रज्वलित होता हुआ औरों के हृदयों को प्रकाशित करेगा, तब विकासवाद के नियम के अनुकूल भी आपका दर्जा समस्त जातियों से उत्तम होगा। क्योंकि जब वह ज्योति मनुष्य के अन्तःकरण से निकलती हुई अपना पूरा-पूरा तेज बाहर दिखला देती है, तो उस समय विकासवाद के तत्त्व-वेत्ता भी उस मनुष्य को समस्त अन्य मनुष्यों पर विशेषता देते हैं, अर्थात् उसका दर्जा सारे संसार की सृष्टि से बढ़कर मानते हैं; मगर हिन्दुओं के यहाँ तो वह अवतार ही समझा जाता है। अतः यदि मनों में संसार के उद्धार करने का आवेश उठता है, तो ऐ सहानुभूति करने-वालो! पहले अपने आपका सुधार करो, और इस प्रकार से आपका अपने हृदय को शुद्ध करना अपने आत्मा में निष्ठा करना ही अपने आपका सुधार करना होगा। जब इस रीति से अपना सुधार हो जायगा, तो यह अवश्य समझ लेना कि दूसरों का भी अपने आप सुधार हो जायगा; वरन् सबको निश्चय करना चाहिए कि इस नियम के विरुद्ध सुधार कभी संसार में न हुआ है और न होगा। इस विषय में आपको अपना अनुभव गवाही देगा।

अन्तःकरण को शुद्ध करने का साधनः—पहले वर्णन कर आये हैं कि सुधार के इच्छुक या सुधारक महाशय के लिये शुद्ध अन्तःकरण रखना अत्यन्तावश्यक है। अतः अन्तःकरण के के स्वच्छ रखने का उपाय भी शास्त्र और तत्त्व-ज्ञान के अनुसार बता देना आवश्यक समझकर स्पष्ट किया जाता है। इससे पहले कि अन्तःकरण के स्वच्छ करने की रीति वर्णन की जाय, पहले प्रत्येक का ध्यान प्रकृति की ओर खींचा जाता है कि उसने सांसारिक पदार्थों को निर्मूल और स्वच्छ या मलिन और स्थूल करने का कौन सा ढङ्ग वा नियम अंगीकार किया है। क्योंकि जो रीति प्रकृति ने सांसारिक पदार्थों को स्वच्छ और निर्मल करने के लिये अंगीकार की है, वही ढङ्ग या नियम यदि मनुष्य स्वीकार करेंगे, तो निश्चयतः आशा की जा सकती है कि अन्तःकरण बहुत शीघ्र स्वच्छ और निर्मल हो जायगा, यद्यपि मलिन तो वह पहले से है हो। विज्ञान के मत से सूर्य का प्रकाश सप्त रङ्गों का समुदाय होता है, और जो रङ्ग संसार में मौजूद हैं, वे केवल सूर्य के ही हैं।

अब प्रत्येक व्यक्ति जो विज्ञानविद् नहीं है, यह सुन कर बड़ा चकित होगा और यों कहेगा कि जब हम नीला कमल कहते हैं, तो उससे स्पष्ट पाया जाता है कि कमल का रङ्ग नीला है, फिर किस प्रकार कहा जा सकता है कि रङ्ग केवल सूर्य का है? नीला रङ्ग कलम का न होने में विज्ञान यह प्रमाण देता है कि रात को अँधेरे में हम कमल की पंखड़ियाँ और आकार, गोलाई और वजन आदि वैसा ही पाते हैं, जैसे कि दिन में प्रकाश के समय पाते थे, मगर नीला रङ्ग जो सबेरे प्रकाश में कमल का देखते थे, अब अंधेरे में कमल के साथ बिलकुल दिखाई नहीं देता। यदि कमल की पत्तियाँ, आकार और

गोलाई आदि की तरह नीला रंग भी कमल का अपना होता, तो कमल के शेष सब अंगों के समान वह भी सदैव कमल के साथ ही बना रहता।

परन्तु अँधेरे में शेष सब अंग तो कमल के साथ बने रहते हैं और भान भी होते हैं, किन्तु केवल रङ्ग ही नहीं रहता और न दिखाई ही देता है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि रङ्ग कमल का नहीं, वरन् उस प्रकाश का है, जिसमें या जिसके कारण नीला रङ्ग दिखाई देता था और लगातार नज़र आता था। इसमें अब फिर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यद्यपि यह सिद्ध हो गया कि रंग कमल का न था, किन्तु यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि जो रंग किसी वस्तु का प्रकाश में देखा जाय, वह केवल प्रकाश का होता है ? इस विषय में सविस्तार उत्तर तो प्रत्येक महाशय को नेबुलरथियूरी (नीहारिका-सिद्धान्त) के पढ़ने से मिल सकता है, किंतु यहाँ केवल संक्षेपतः वर्णन किया जा सकता है। इस विषय में विज्ञान यों कहता है कि जो रंग नीला या पीला आदि वस्तुओं का दिखाई देता है, उसका कारण केवल यह है कि जो सात रंग (लाल, नारंगी, नीला, आसमानी, पीला, हरा और बनफ्शी) विज्ञान ने सूर्य के प्रकाश के वर्णन किये हैं, उनमें से छः रंग तो वस्तुएँ शोषण कर जाती हैं, और शेष एक रंग सूर्य की ओर वापस लौटा देती हैं। जो रंग वस्तुएँ नहीं शोषण करतीं, बल्कि सूर्य की ओर ही वापस लौटाती रहती हैं, वही रंग दिखाई देता है। यद्यपि दृष्टि में तो ऐसा ही आता है कि रंग वस्तु का है, किंतु वास्तव में वह रंग केवल उसी सूर्य का होता है कि जिस (स्रोत) से पहले निकलकर वह वस्तुओं में शोषित होने के लिये वस्तुओ की ओर आया था, और शोषित न किये जाने पर फिर अपने स्रोत

(सूर्य) की ओर ही गमन करता है। इस तरह से प्रत्येक रंग, जो वस्तुओं का दिखाई देता है, वास्तव में सूर्य का ही होता है।

अब यहाँ एक और प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रकाश के सात रंगों में काला और सफ़ेद गिने नहीं गए, इसलिए हम किस प्रकार से कह सकते हैं कि ये दो रंग सूर्य के प्रकाश के ही हैं ? और यदि सूर्य के प्रकाश के नहीं हैं, तो ये दोनों रंग कहाँ से उत्पन्न हो आए ? इसके उत्तर में विज्ञान का यह कहना है कि यदि आप इन रंगों का भी स्रोत मालूम करना चाहें, तो पहले इन दोनों रंगों के प्रकट होने का कारण आपको जानना चाहिए। जब इनके प्रकट होने का कारण मालूम हो जायगा, तो फिर इनके स्रोत का हाल भी अपने आप मालूम हो जायगा। वस्तुओं का काला रंग उस समय होता है, जब वस्तुएँ प्रकाश के सातों रंगों को अपने में शोषण (जज़्ब) कर लेती हैं; और सफ़ेद रंग उस समय होता है, जब वस्तुएँ प्रकाश के सातों रंगों में से एक को भी अपने में शोषित (जज़्ब) नहीं करतीं, वरन् सातों के सातों रंगों को प्रकाश के स्वामी सूर्य की ओर वापस लौटा देती हैं, या दूसरे शब्दों में यों कहो कि वापस लौटाती रहती हैं। अतः ये दोनों रंग कहीं बाहर से किसी और वस्तु के द्वारा उत्पन्न नहीं हुए, वरन् वस्तुओं का ये दोनों रंग प्रकट करना केवल सूर्य के प्रकाश के सातों रंगों को अपने में शोषित करने या अपने से बाहर निकालकर सूर्य की ओर वापस लौटाने के कारण से हैं। इसलिये इन दोनों रंगों के प्रकट होने का कारण भी सूर्य का प्रकाश ही हुआ। किंतु यहाँ पर कर्म और कर्त्ता या सूर्य और प्रकाश में कुछ अंतर ही नहीं है, क्योंकि अपरिमित प्रकाश के स्रोत को विज्ञानविद् सूर्य मानते है, अतः इन दोनों रंगों का कर्त्ता अर्थात् इन दोनों का उत्पन्न करनेवाला सूर्य ही

हुआ। अतएव ये दोनों रंग भी सूर्य से हैं। अस्तु, यहाँ पर और लंबे तर्क की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इतने लंबे प्रमाण से केवल तात्पर्य यह था कि संसार की समस्त वस्तुओं के काले और श्वेत हो जाने का कारण स्पष्ट किया जाय, और यह सिद्धान्त आपकी समझ में आ जाय कि संसार की समस्त वस्तुएँ केवल त्याग से अर्थात् सूर्य के प्रकाश के रंगों को अपने में प्रविष्ट न करने से, या उनके त्याग करने से ही श्वेत होती हैं। अतः जिस प्रकार त्याग से अर्थात् प्रकाश के रंगों को अपने स्वामी की ओर वापस लौटा देने से समस्त वस्तुएँ श्वेत रंग की हो जाती हैं, वैसे ही प्राणियों के अन्तःकरण भी यदि यह शैली ग्रहण करें, अर्थात् भाँति-भाँति के सांसारिक पदार्थों को अपने में शोषित न करें, वरन् उनके स्वामी परमात्मा की ओर लौटा दें, तो वे भी श्वेत वस्तुओं की भाँति श्वेत, स्वच्छ और शुद्ध-चित्त हो सकते हैं। और जब चित्त उस पतली और स्वच्छ चिमनी के समान, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, स्वच्छ और निर्मल हो जायँगे, तो उनमें से आत्मा का प्रकाश फूट-फूटकर बाहर स्वतः निकलेगा, वरन् स्वयं आत्मरूपी ज्योति स्वच्छ पर्दे में से आँखें मारती हुई दिखाई देगी। विरुद्ध इसके जब समस्त सांसारिक पदार्थों का प्रवेश अंतःकरण में हो जायेगा, अर्थात् जब मन समस्त भाँति-भाँति के पदार्थों की कामना करके उनको अपने में शोषित करेगा, तो वह (मन) काली वस्तुओं की भाँति मलिन और काला हो जायगा। इसलिये यदि आप स्वच्छ-हृदय होना चाहते हैं, तो प्यारो! स्वच्छ वस्तुओं की तरह आप सब पदार्थों का त्याग स्वीकार कीजिये। संसार में समस्त काली वस्तुएँ आपको यही उपदेश कर रही हैं कि यदि सांसारिक

पदार्थों को (इस तुच्छ अहंकार के वश में आकर) अन्तःकरण में शोषित करते जाओगे, तो उनकी भाँति आपका अन्तःकरण या आप स्वयं, काले हो जाओगे, और इस तुच्छ स्वार्थपरता के फंदे में फँसना ही आत्म-हनन करना है। इसलिये भगवन्! स्वच्छ या शुद्ध अन्तःकरण बनने के लिए यह आवश्यक है कि आप श्वेत वस्तुओं के समान मन को समस्त सांसारिक पदार्थों का पीछा करने से हटा दें और मन में उनका लेश-मात्र भी प्रवेश न होने दें। जब इस प्रकार से आप आचरण करेंगे, तो फिर आपके रोम-रोम से यह आवाज़ प्रत्येक को सुनाई देगी कि त्याग ही अन्तःकरण की शुद्धि का एकमात्र साधन है।

किंतु स्मरण रहे कि उक्त अमृत उसी समय प्राप्त होगा, जब आप मन को पदार्थों से विरक्त करेंगे, अर्थात् मन को त्याग सिखाएँगे, क्योंकि इस अमृत को पाने के लिये श्रुति भगवती यह सिखलाती है—

धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति। (केनोपनिषद्)

अर्थात् धैर्यवान् पुरुष इस जगत् से मुँह मोड़कर अमृत को प्राप्त होते हैं। वैसे भगवन्! यदि आप अमृत चाहते हैं, तो मोड़ो मुँह जगत् के पदार्थों से, वापस लौटाओ मन को अपने मालिक सूर्य की ओर, देखो प्रत्येक पदार्थ में अपने सूर्य-रूपी आत्मदेव को ही, जिससे पदार्थ-भाव मन से गर्दभ-शृंगवत् उड़ जाय, जैसे नामदेव के मन से उड़ गया था कि जो कुत्ते को रोटी ले जाते देखकर अपने हाथ में साग लेकर यह कहने लगा—"रूखी न खाइयो मेरे स्वामीजी, अपना बाँटा ले जाइयो" और उसके पीछे हो लिया था। अर्थात् लोगों की दृष्टि में तो कुत्ता रोटी ले जा रहा था, मगर नामदेवजी के विचार में तो

उनका स्वामी परमात्मा ही उनके हाथ से छीनकर ले जा रहा था।

इसी प्रकार प्यारो! मन को यदि पदार्थों से लौटाकर अपने सूर्य-रूपी आत्मदेव में लगाओगे, तो पदार्थ देखने के स्थान पर आपको वहाँ भी अपना आत्मदेव ही दिखाई देगा, वरन् पदार्थ-भाव बिलकुल ही उड़ जायगा। जगत् के चित्र-विचित्र पदार्थों को मन में न शोषित (जज़्ब) करने का तात्पर्य यही है कि उनसे मन का मुँह ऐसा मुड़ जाय कि तनिक पदार्थ-भाव मन में न रहे, वरन् उसकी द्वैत-दृष्टि भी उड़ जाय, और परमात्मा ही परमात्मा दिखाई दे। किंतु ऐ सुधार के इच्छुको! ऐ संसार पर सहानुभूति प्रकट करनेवालो! यह स्मरण रहे कि पदार्थ-भाव मन से कभी न मिटेगा, जब तक मन को आत्मा में लीन न करोगे। क्योंकि मन का केवल पदार्थों की ओर जाने से रोकना ही पदार्थ-भाव को दूर करने के लिये काफ़ी न होगा, वरन् मन का पदार्थों से हटकर अपने आत्मा में निष्ठा करना पदार्थ-भाव को दूर करेगा। ऐसे ही भगवन्! यदि आप पदार्थों का विचार अन्तःकरण से उड़ाना चाहते हैं, तो उठो! उठो! मनको आत्मा में स्थित करो, क्योंकि आपके मन का आत्मा में स्थित होना ही हलका होकर ऊपर उड़ जाना है। ब्रह्मनिष्ठ होने के बाद आपको सुधार करने की चिंता भी न करनी होगी, वरन् बिना प्रयत्न किए संसार का भला स्वाभाविक होता जायगा, चाहे उस समय आप निर्जन वन में बैठो, चाहे संसार में प्रकट रूप से उपदेश दो, स्वाभाविक ही संसार का कल्याण होगा। इसलिये प्यारो! इसके पहले कि कोई और साधन सुधार का ग्रहण करो, यही रीति जो अपने आपको सुधार करने की पुकार-पुकारकर बतलाई गई है, और जिससे संसार का श्रेष्ठ उपकार हो सकता है, उसको आप हृदयंगम करो।

३

कर्म

(ता० ५ जनवरी, १९०२ के दिन सोशल ऐसोसियेशन, मथुरा में दिया हुआ स्वामी राम का व्याख्यान)*

कुछ लोग कहते हैं कि सारे काम ईश्वर की इच्छा से होते हैं ; कुछ कहते हैं नहीं, मनुष्य के प्रयत्न वा पुरुषार्थ से होते हैं।

पूर्व-कथित महाशय इस मामले को इस तरह माने बैठे हैं कि जो कुछ काम होता है, वह सब ईश्वर ही करता है, और उसकी इच्छा से ही होता है, हमारा इसमें बिलकुल कर्तृत्व नहीं है। और पश्चात्कथित महाशय इस झगड़े को इस तरह तय किये बैठे हैं कि जो काम होता है, मनुष्य के पुरुषार्थ से होता है, ईश्वर का इसमें कुछ भी कर्तृत्व नहीं है। क्योंकि इतिहास में स्पष्ट रूप से देखने में आता है कि नेपोलियन बोनापार्ट ने सम्पूर्ण योरप को अपने ही साहस, पुरुषार्थ और दृढ़ता से छिन्न-भिन्न कर दिया था, नादिरशाह और महमूद ग़ज़नवी आदि का हाल भी इसी तरह का है। अगर ये साहस-भरे वीर पुरुष साहस, दृढ़ता और पुरुषार्थ को एक किनारे रखकर केवल घर में ईश्वर पर भरोसा किये बैठे रहते, तो सारे योरप और भारतवर्ष में अपना सिक्का कभी न जमा

---

* इस व्याख्यान के संक्षिप्त नोट श्री आर० एस० नारायण स्वामी ने, जो उन दिनों ब्रह्मचारी थे और श्री स्वामी राम की सेवा में रहते थे, लिखे थे और तत्पश्चात् आर्टिकल के रूप में वे छपाये गये थे। कर्म और प्रारब्ध के विषय पर कुछ समय सभा के सभासदों में शास्त्रार्थ होता रहा, तत्पश्चात् स्वामीजी का व्याख्यान आरम्भ हुआ था।

सकते। अतः साहस और दृढ़ता अर्थात् पुरुषार्थ ही आवश्यक है, ईश्वर पर भरोसा करके बैठे रहना अपने आपको आलसी और कायर बनाना है।

इसके सम्बन्ध में वेदांत यों कहता है कि यदि दूरदर्शिता-पूर्वक देखा जाय, अर्थात् यदि इस झगड़े की सत्यता पर दृष्टि डाली जाय, तो विदित होगा कि इन दोनों बातों में—अर्थात् ईश्वर सब कुछ करता है, वा पुरुषार्थ से सब कुछ होता है—कुछ भी अंतर नहीं है, बल्कि अंतर केवल दृष्टियों में है, जो वास्तविकता तक नहीं पहुँचतीं। वेदांत तो उन सब लोगों की सेवा में, जो कहते हैं कि ईश्वर ही सब कुछ करता है, यह प्रश्न उपस्थित करता है कि पहले केवल इतना बता दो कि आप ईश्वर का स्वरूप क्या माने बैठे हैं? आया वह निराकार अर्थात् रूप-रहित है या साकार अर्थात् रूप-रेखवाला है; आया वह शरीर के स्वामी की भाँति कर्त्ता पुरुष है, या केवल अकर्त्ता; वह सम्बन्ध-सहित वा संगवाला है या निस्संबंध वा असंग है? जब आप हमारे इन प्रश्नों का उत्तर सविस्तार और ठीक-ठीक रीति से दे देंगे या सुन लेंगे, तो आप पर इस ग्रन्थि का भेद आप ही आप खुल जायगा। फिर उन महाशयों को—जो केवल साहस और दृढ़ता को ही मानते हैं, और ईश्वर की इच्छा आदि को एक कोने रखते हैं, तथा प्रमाण में इतिहास आदि की साक्षियाँ दे-देकर पुरुषार्थ को सिद्ध किया चाहते हैं, मगर अपनी बुद्धि को ज़रा और आगे नहीं दौड़ाते—वेदांत अपना आत्मा समझकर यह उपदेश देता है कि प्यारो! यदि इतिहास की सत्यता को खूब समझकर पढ़ते, तो यह परिणाम न निकालते। यदि अब भी इतिहास को दुबारा ग़ौर से पढ़ोगे, तो ऐसा परिणाम कभी भी आपको प्राप्त न होगा।

बल्कि इससे बढ़कर सफलता के उत्तमोत्तम कारण आपको दिखाई देंगे, क्योंकि इतिहास में प्रायः भ्रांति भी हो जाती है। एक तत्त्ववेत्ता ने क्या ही अच्छा कहा है—

"Don't read history to me, for I know it must be false. (मुझे इतिहास पढ़कर न सुनाओ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इतिहास अवश्य झूठा होता है।)"

यह पढ़कर सारे इतिहास और इतिहासज्ञ बड़े आश्चर्यित होंगे। बल्कि ये प्रश्न उपस्थित करेंगे—

(१) क्या इतिहास बिलकुल झूठे ही होते हैं?

(२) क्या ऐसे-ऐसे सुयोग्य इतिहासकारों ने केवल झूठे को ही उन्नति देने के लिये अपना बहुमूल्य समय व्यय किया था?

इस तरह के उल्टे-पुल्टे आक्रमण करने को तैयार हो जायँगे।

इसमें राम का यह कहना है कि यद्यपि इतिहास बिलकुल ही झूठा नहीं होता, मगर प्यारो! इस तत्त्ववेत्ता का कथन भी अनुचित नहीं है, बल्कि कुछ सत्यता रखता है। यद्यपि वह देखने में व्यर्थ दिखाई देता है, मगर उसमें भी कुछ रहस्य है। क्योंकि हम नित्य देखते हैं कि मनुष्य जब अपने नित्य के रोज़नामचे (दिनचर्या) लिखने में बहुत सी भूलें कर जाता है, तो सोचिये कि औरों के हाल लिखने में कितनी भूलें करता होगा। फिर आजकल लोग उन मनुष्यों के इतिहास लिख रहे हैं, जिनको उनके बाप-दादे ने भी नहीं देखा था। केवल ऐतिहासिकों के झूठे-सच्चे वृत्तांतों को लेकर उसमें से कुछ उद्धृत करके वे अपने इतिहासों में अंकित कर रहे हैं। इससे स्पष्ट विदित होता है कि उनमें लाखों ही भ्रांतियाँ होती होंगी, और केवल औरों की नक़ल करके अत्युक्ति से ही किताबें भरी जाती होंगी। क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि एक मनुष्य

अपना आँखों-देखा हाल अपने रोज़नामचे में लिखते समय बीसों भूलें कर जाता है, तो फिर क्या यह बात असंभव है कि वह उन लोगों के हाल लिखने में अगणित भूलें न करता होगा कि जिनको उसने स्वयं तो क्या, बल्कि उसके बाप-दादे ने भी नहीं देखा है? इसलिये इतिहास की इबारत को समझने के लिये भी ऐसे मस्तिष्कवान् मनुष्य का होना आवश्यक है, जो पढ़ते समय इन समस्त भ्रांतियों पर दृष्टि रक्खे; अन्यथा इबारत की शब्दावली पर ही लट्टू होनेवाले लोग न तो नेपोलियन के साहस और दृढ़ता (पुरुषार्थ) की सत्यता समझेंगे, और न कोई और अच्छा परिणाम ही निकाल सकेंगे। मगर खैर, ऐसे महाशयों से भी, जो केवल इतिहास के प्रमाण ही सामने रखना चाहते हैं और स्वयं कुछ नहीं विचारते, वेदान्त बड़े प्रेम और स्नेह से यह पूछता है कि हमारे ही लिये अपनी दशा पर विचार कर बताओ कि किस समय आपको सफलता प्राप्त होती है? या दूसरे शब्दों में यह कि जिस समय आपको सफलता प्राप्त होनेवाली होती है, तो उस समय आपकी भीतरी दशा क्या होती है? (क्योंकि जब आपको अपनी सफलता का तत्त्व विदित हो जायगा, तो औरों की सफलता के विषय में अपने आप ठीक परिणाम अवश्य निकाल लोगे।) इसके उत्तर में प्रत्येक के अन्तःकरण से यह ध्वनि निकलेगी कि हर काम में केवल उस समय सफलता होती है, जब साहस भी अपूर्व हो और चित्त में अहंकार की गंध तक न हो। जो लोग नेपोलियन बोनापार्ट के साहस आदि का हवाला देते रहते हैं, अगर वे उसके जीवन-चरित्र को ग़ौर से पढ़ेंगे, तो अवश्य यह बात पायेंगे कि जिस समय नेपोलियन बोनापार्ट सफलता प्राप्त कर रहा था, उस समय उसके हृदय में कभी यह विचार उत्पन्न न होता था कि मैं काम कर

रहा हूँ; बल्कि मस्ती के जोश से बेख़बर होकर वह हमेशा लड़ता था, इससे उसे सफलता प्राप्त होती थी। जब कोई अहंकार को साथ लेकर लड़ा है, उसी समय उसने हार खाई, और बंदी हुआ है। क्योंकि यही प्रकृति का नियम है कि जहाँ अहंकार होता है, वहाँ कभी भी सफलता प्राप्त नहीं होती। इस विषय में हरएक का अनुभव साक्षी है। क्योंकि प्रकृति का यह नियम कि "अहंकार से अलग होने पर ही सदैव सफलता होती है," केवल एक व्यक्ति पर लागू नहीं है, बल्कि सब पर इसका शासन है।

शंका—जब अहंकार का भाव सफलता प्राप्त करते समय बिलकुल उड़ा हुआ था, तो उस समय नेपोलियन के हाथ से जो काम हुआ, वह किस गणना में होगा—किस नाम से पुकारा जायगा?

उत्तर—वेदांत यहाँ यह कहता है कि जिस वक़्त मनुष्य के भीतर से काम करते समय अहंकार दूर हो जाता है, तो उसके भीतर वह शक्ति काम करती है, जो अहंकार से रहित अर्थात् स्वार्थ से दूर है। इसी शक्ति को, जो स्वार्थ और अहंकार की सीमा से परे है, वेदांत में ईश्वर कहते हैं। अतः सफलता प्राप्त होते समय केवल ईश्वर ही स्वयं काम करता होता है। यद्यपि उस समय सफलता प्राप्त करता नेपोलियन दिखाई देता था, और सफलता उसके नाम से भी पुकारी जाती थी, परंतु वास्तव में उस समय स्वयं ईश्वर वा शक्ति ही काम करती थी। (या यों कहो कि उस समय ईश्वर ही सब काम करता था)। जैसे समुद्र का भाग जब बंगाल के नीचे होता है, तो उसका नाम बंगाल की खाड़ी होता है, जब अरब के नीचे है, तो अरब का समुद्र कहलाता है, और जब योरप के नीचे है, यो रोम के सागर के नाम से प्रसिद्ध होता है, इत्यादि-इत्यादि। परंतु

वास्तव में एक समुद्र के ही नाम भिन्न-भिन्न स्थानों के कारण भिन्न-भिन्न पड़ जाते हैं। इसी तरह एक सर्वव्यापी, सब पर आवृत, शक्ति-स्वरूप जब नेपोलियन के द्वारा काम करता है, तो वह साहस के नाम से अभिहित होता है, और जब पेड़ के पत्तों आदि में काम करता है, तो उसका नाम विकास होता है, अर्थात् यह कि पेड़ बढ़ रहा है। बात इतनी है कि एक रूप में उसकी नेपोलियन के साहस से पहचान हो सकती है, और दूसरे रूप में वृक्ष के विकास से। मगर सबमें वही एक शक्ति है, अर्थात् सारे काम वही शक्ति करती है। अतएव लोगों का यह कथन कि नेपोलियन ने विजय की, बिलकुल निरर्थक है, और विजय की सत्यता को न जानना सिद्ध करता है।

अब उन महाशयों को लीजिए, जो यह मानते हैं कि सारे काम ईश्वर की इच्छा से होते हैं, मगर ईश्वर की इच्छा से उनका अभिप्राय प्रारब्ध होता है। अर्थात् जो कुछ होता है, वह ईश्वर की बनाई हुई प्रारब्ध से होता है, और कर्म वा पुरुषार्थ से कुछ नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि वे इन शब्दों— अर्थात् कर्म और प्रारब्ध—के अर्थ नहीं जानते। उनको भी वेदांत यों समझाता है कि प्यारो! अगर आपने इन दोनों की सत्यता को समझा होता, तो भ्रांति से लोगों के साथ झगड़ा करने में समय न बिताते, बल्कि अपने सुधार में अपना समय देते। अस्तु, अब आप इस विषय के निर्णय को ध्यान से पढ़कर इसका परिणाम हृदयंगम कीजिए।

वेदांत इस विषय का यों निपटारा करता है कि जैसे गणित में एक ही वाक्य में दो प्रकार की राशि होती है, एक राशि अस्थिर और दूसरी राशि स्थिर, जैसे—

$$३\,\text{अ}^{५}\,\text{ल} + ६४\,\text{अ}^{४}\,\text{ल} - \text{अ}^{२}\,\text{ल} + \text{अल} - \text{अल}^{३}$$

इनमें अ अस्थिर है और ल स्थिर। इसी तरह मनुष्य में भी दो शक्तियाँ मौजूद हैं—एक स्वतंत्र, स्वाधीन अर्थात् कर्म करने की शक्ति, और दूसरी परतंत्र या पराधीन। तात्पर्य यह है कि प्रारब्ध स्वाधीन नहीं है, स्वतंत्र नहीं है।

अब यह देखना चाहिए कि मनुष्य कहाँ तक स्वाधीन है और कहाँ तक पराधीन। कहाँ तक मनुष्य में स्वतंत्रता अर्थात् कर्म करने का अंश है, और कहाँ तक उसमें पराधीनता अर्थात् प्रारब्ध का अंश है।

इससे पहले कि इस विषय को और प्रकार हल किया जाय, गणित का ही उदाहरण लेकर तय किया जाता है। क्योंकि यद्यपि हम लोगों को नित्यप्रति नदी में तैरते देखते हैं, मगर तैरने की विधि का समझना या समझाना ज़रा कठिन बात है, विधि किए ही से समझ में आती है, और किसी तरह नहीं। इसी तरह यद्यपि हम, नित्यप्रति इन दोनों वस्तुओं को मनुष्यों में देखते है, फिर भी उदाहरणों के बिना इनका समझना या समझाना बहुत कठिन होता है। इसलिये यदि इस प्रश्न को हल करने के लिये गणित आदि के उदाहरण उपस्थित किए जायँ, तो कुछ अनुचित न होगा।

द्रव्य-शास्त्र (इल्म-मायात) में द्रव्य की गति पहले एक बूँद की गति के द्वारा निश्चिय की जाती है, और फिर कभी-कभी समवाय-रूप से अर्थात् संपूर्ण जल के प्रवाह की गति के द्वारा मालूम की जाती है। इसी तरह कर्म और प्रारब्ध के इस मामले में भी दो प्रकार से विवेचना की जायगी, एक

व्यष्टि रूप से, दूसरे समष्टि रूप से। इन्हीं को संस्कृत में व्यष्टि और समष्टि भाव कहते हैं।

यदि मनुष्य की दृष्टि से अर्थात् व्यष्टि रूप से विचार किया जाय, तो मालूम होगा कि इसमें एक ऐसा अंश है, जिसको स्वतंत्र या स्वाधीन कर्म के नाम से अभिहित करते हैं, और एक ऐसा है, जिसको पराधीन, परतंत्र या प्रारब्ध (भाग्य) के नाम से प्रसिद्ध करते हैं। जैसे रेशम के कीड़े का हाल है कि जब तक उसने अपने भीतर से रेशम नहीं निकाला, तब तक वह स्वतंत्र है और तभी तक वह स्वाधीन वा स्वेच्छाचारी कहा जाता है ; मगर जब रेशम निकाल चुकता है, तो फँस जाता है, अर्थात् परतंत्र कहलाता है। इसी तरह जो कर्म मनुष्य से हो चुका है, उसके कारण वह उसके फल भोगने के लिए परतन्त्र या पराधीन है ; मगर जो कर्म अभी तक किया ही नहीं, उसके कारण वह स्वाधीन है, और उसके करने का अधिकार रखने के कारण स्वतन्त्र तथा स्वेच्छाचारी कहा जाता है। जैसे मकड़ी जाला बनाने के बाद परतन्त्र या पराधीन है और उससे पहले स्वतन्त्र या स्वाधीन थी, या जैसे रेलगाड़ी, जब तक सड़क नहीं बनी हर ओर चलने के लिये स्वाधीन है, और जब सड़क बन गई, तो उस पर चलने के लिये विवशहै—अर्थात् सड़क बनने के बाद रेलगाड़ी उस पर चलने के बन्धन में आ जाती है—इसी तरह मनुष्य भी एक कर्म के करने से पहले उसके फल आदि से स्वतंत्र है, और कर्म करने के पश्चात् उसके फल भोगने में परतन्त्र है। अतः मनुष्य में इन दो वर्तमान अंशों का नाम स्वतंत्रता और परतंत्रता या कर्म (पुरुषार्थ) और प्रारब्ध (भाग्य) है। यद्यपि कुछ लोग कर्म और भाग्य को एक ही गिरोह में गिनते हैं, अर्थात् इन दोनों के एक ही अर्थ करते हैं ; मगर वेदान्त में भाग्य से तात्पर्य है

परतंत्र, पराधीन वा जकड़ा हुआ—अर्थात् मनुष्य में वह अंश जो कर्मों के फल भोगने में परतन्त्र वा विवश है—और कर्म से तात्पर्य है स्वतंत्र वा स्वाधीन, अर्थात् मनुष्य में वह अंश जो अभी फल आदि के बन्धन से मुक्त है, और स्वतन्त्र वा स्वेच्छाधीन है। अँगरेजी में एक कहावत है कि 'मनुष्य अपनी प्रारब्ध बनाने का स्वयं अधिकार रखता है', अर्थात् 'मनुष्य अपना भाग्य अपने हाथों बनाता है।' इसमें हमारे शास्त्र का भी यही सिद्धान्त है कि 'जैसा करोगे, वैसा भरोगे।' इसके अर्थ यही हैं कि जैसे कर्म या कामना करोगे, वैसे उनके फल दूसरे जन्म में या इसी जन्म में भाग्य के रूप में प्रकट हो जायँगे।

लोग इस बात पर दिन-रात रोते रहते हैं—"हाय ! हमारी कामनायें पूरी नहीं होतीं।" मगर वेदान्त इसमें यों कहता है—"प्यारो ! अगर आपको रोना ही स्वीकार है, तो धाड़ मारकर रोओ इस बात पर कि आपकी कामनायें अपना फल दिए विना नहीं रहेंगी।" यह सुनकर हरएक अनजान के मन में यह शंका उठती है कि यदि मान भी लिया जाय कि हमारी सारी कामनायें पूरी होती हैं, तो ये क्यों पूरी होती हैं ? इसके उत्तर में वेदांत यह बताता है मन जिसमें संकल्प अर्थात् कामनायें उठती हैं, उसका मूल केवल आत्मदेव है, जो सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, अर्थात् इसका प्रत्येक विचार और कामना सची हुए विना नहीं रहती। इस (आत्मदेव) को ही शक्ति या ईश्वर के नाम से अभिहित करते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि इसकी सारी कामनायें पूरी हों, जब कि वह अपना मूल सत्य काम और सत्य सङ्कल्प रखता है।

शङ्का—अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वेदान्त का जब यह सिद्धान्त है कि मन की कामनायें पूरी होती हैं, तो वे पूरी

होती हुई दिखाई क्यों नहीं देती ? क्योंकि किसी को भी अपनी कामनायें हर समय पूरी होती दिखाई नहीं देती हैं। अतएव उपर्युक्त शास्त्र का सिद्धान्त बिलकुल मिथ्या और अशुद्ध है।

उत्तर—वेदांत इसका कारण यों बताता है कि जैसे बड़ी अदालत (chief court) और छोटी अदालत (small Cause Court) दो अलग-अलग अदालतें होती हैं। बड़ी अदालत में तो मुक़द्दमे अति लम्बे-लम्बे और अधिक होते हैं, इसलिये उनकी पेशी की तारीख़ ५ वर्ष या उससे कुछ न्यूनाधिक रक्खी जाती है। इतने समय में सम्भव है कि मुद्दई मर जाय, या जज साहब ही बदल जायँ, या वकील साहब आदि न रहें, मगर मुक़द्दमे की पेशी अवश्य होती है। और किसी न किसी तरह का फ़ैसला भी अवश्य होता है। चाहे पहली पेशी में, चाहे चार या पाँच पेशियों के बाद—अर्थात् यदि बहुत शीघ्र प्रयत्न किया जाय, तो १० या १५ वर्ष में मुक़द्दमे का निर्णय होता है; और दूसरी अदालत ख़फ़ीफ़ा में मुक़द्दमे छोटे-छोटे और बहुत थोड़े होते हैं, इसलिये पेशी की तारीख़ भी उसी दिन या एक-दो दिन के बाद रक्खी जाती है, और पहिले तो वह मुक़द्दमा कच्ची पेशी ही में तय हो जाता है, अगर देर भी लग जाय, तो भी एक सप्ताह के भीतर-भीतर निर्णित होता है, अर्थात् मुक़द्दमे बहुत थोड़े और छोटे होने के कारण बहुत शीघ्र निर्णित होते हैं। ऐसे ही मनुष्य भी दो प्रकार के मनवाले होते हैं—एक ऐसा मन रखते हैं कि जिसके भीतर बड़े-बड़े भारी और असंख्य संकल्प-कामनाएँ उत्पन्न होती रहती हैं' और अधिक एवं भारी होने के कारण चीफ़कोर्ट की भाँति, जहाँ मुक़द्दमे शीघ्र निर्णित नहीं होने पाते और जहाँ यह भी संभव है कि वे मुक़द्दमे (संकल्प,

कामना आदि) निर्णीत होने के लिये अगर उस जज साहब (ऐसे मनवाले मनुष्य) की दो-तीन पेशियाँ (दो-तीन जन्म) भी ले लें, तो बड़ी बात नहीं है। इसलिये ऐसे मन रखनेवाले महाशयों को, जो लगभग सब संसारी होते हैं, चीफ़कोर्ट अर्थात् बड़ी अदालत के जजों की पंक्ति में गिनना चाहिए। और दूसरे लोग ऐसा मन रखते हैं, जिसके भीतर कामनाएँ बहुत कम और बहुत छोटी-छोटी उठती हैं, अर्थात् जहाँ मुक़दमे बहुत थोड़े और छोटे-छोटे होते हैं; इस हेतु वे पहले तो एकदम में ही, नहीं तो एक दो घंटे या दिनों के भीतर-भीतर पूरे निर्णय हो जाते हैं। ऐसे मन रखनेवाले महाशय, जो प्रायः ज्ञानी या ऋषि लोग होते हैं, हिंदुओं के यहाँ अदालत खफ़ीफ़ा के जज माने जाते हैं। यद्यपि नाम या अदालत के विचार से ये छोटे दिखाई देते हैं, परन्तु पद में इनको हमारे शास्त्र औलिया या पैग़ंबर (सिद्ध या अवतार) की श्रेणी में गिनते हैं। मगर यह याद रहे कि कामनाएँ अर्थात् मुक़द्दमे इन दोनों महाशयों के निर्णीत अवश्य होंगे—अर्थात् वास्तव में ये दोनों महाशय सत्यकाम और सत्यसंकल्प अवश्य कहे जायँगे; केवल अन्तर इतना रहेगा कि एक के मुक़द्दमे (कामनाएँ) बहुत देर में और मुद्दत के बाद निर्णीत होंगे, और कामनाओं के देर में पूरी होने के कारण वे महाशय सत्यकाम और सत्यसंकल्प देखने में नहीं मालूम होंगे, और दूसरों के मुक़द्दमे (संकल्प) बड़ी जल्दी बल्कि तत्काल पूर्ण होते दिखाई देंगे, और कामनाओं के शीघ्र पूरा होने के कारण वे सत्यकाम और सत्यसंकल्प दिखाई देंगे। मगर इन दोनों व्यक्तियों के संकल्पों अर्थात् मुक़द्दमों के पूरा होने में तनिक भी संशय नहीं है। अतएव ऐसे

महाशय जो इस बात की शिकायत करते हैं कि हमारी कामनाएँ पूरी होती नहीं दिखाई देतीं, इसमें केवल उनकी अपनी कमी है। यदि वे अपनी कामनाओं को पूरा होते देखना चाहते हैं, तो अदालत खफ़ीफ़ा के जज (ज्ञानी, सिद्ध, अवतार) की भाँति अपनी अवस्था बनाएँ—अर्थात् उनकी भाँति मन में कामनाएँ (संकल्प-मुक़द्दमे) छोटी-छोटी और बहुत थोड़ी होने दें। स्वयं उनका अपना अनुभव अपने आप उनको साक्षी देगा, वरन् उनको फिर कहने की भी आवश्यकता न रहेगी।

शंका—यदि स्वयं हमारी ही कामनाएँ पूरी होती हैं, तो फिर भाग्य के, जिसकी चर्चा शास्त्रों में प्रायः आती है, क्या अर्थ हैं?

उत्तर—केवल जो कामनाएँ असंख्य होने के कारण एक जन्म में मरण-पर्यंत पूरी नहीं हुईं, उनका अवशिष्ट समुदाय, पूरी होने के लिये, अपनी शक्ति के अनुसार, दुबारा जन्म दिलाता है और वे ही, न पूरी हुई कामनाएँ जिन्होंने मरने के पश्चात् अपना-अपना फल देने के लिये दुबारा जन्म दिलाया है, अब (दूसरे जन्म में) भाग्य कहलाती हैं, और इसीलिये हमारे शास्त्रों में लिखा है कि संकल्पों या कामनाओं के अनुसार लोगों का दूसरा जन्म होता है।

शंका—हिंदुओं के यहाँ यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'अंत मत सोई गत' अर्थात् जैसी मरने के समय कामनाएँ होती हैं, उन्हीं के अनुसार दूसरा जन्म होता है। मगर आप बतला रहे हैं कि जो कामनाएँ पूरी हुए विना पहले जन्म से बची रहती हैं, उनका फल जन्म होता है। इसमें फ़र्क़ क्यों है?

उत्तर—वेदांत भी इस बात का अनुमोदन करता है कि जो विचार अन्त में अर्थात् मरने के समय होते हैं, उन्हीं के अनुसार

दुबारा जन्म होता है। मगर साथ इसके वेदांत इस बात पर भी बड़ा जोर देता है कि मरते समय विचार और कामनाएँ भी वे ही मन में आती हैं, जो जीवन में मनुष्य के चित्त पर सवार रहती थीं। क्योंकि परीक्षा के कमरे में प्रश्नों के उत्तर उसी बालक के मन से निकलते जो वर्ष भर पहले पढ़ता रहता है; और जो सारी आयु में पढ़ा ही नहीं, वह कभी संभव ही नहीं है कि परीक्षा में जाकर पर्चा लिख आवे या परीक्षा उत्तीर्ण कर सके। वास्तव में वही व्यक्ति परीक्षा पास कर सकता है, जो परीक्षा के समय से पहले सारी आयु पढ़ता रहा हो। इसी तरह जो व्यक्ति सारी आयु भर बुरे विचार या बुरी कामनाएँ करता रहता है, तो संभव नहीं है कि मरने के समय अच्छी कामनाएँ उसके मन में उत्पन्न हों; और न यह सम्भव हो सकता है कि जो व्यक्ति सारी आयु अच्छी कामनाएँ या अच्छे काम करता रहा हो, मरने के समय बुरे विचार या बुरी कामनाएँ उसके मन में प्रवेश करें, बल्कि जो विचार सारी आयु भर में पहले उठते रहे हैं और अभी तक पूरे नहीं हुए, वे ही विचार मृत्यु के समय उसके मन में आयेंगे या उन्हीं का समवाय शरीर धारण करके मृत्यु के समय उसके सामने आएगा, और उनके अनुसार वह मरने के पश्चात् दुबारा जन्म लेगा।

अतः यह सिद्ध हुआ कि एक जन्म की अवशिष्ट कामनाओं का फल प्राप्त करना ही दूसरे जन्म की आवश्यकता उत्पन्न करना है। वह व्यक्ति जिसके मन में मरने से पहले ही (जीवन काल में) विचारों का उठना बंद हो गया है, उसके मन में मरने के समय भी कोई अच्छा या बुरा विचार उत्पन्न नहीं हो सकता। इसलिये उसका कोई और जन्म भी नहीं

होता। मगर ऐसी अवस्था प्रायः ज्ञानी या जीवन्मुक्त पुरुषों को होती है। अतः जब यह सिद्ध हुआ कि जो कामना (संकल्प) या कर्म मनुष्य कर चुका है, उनका फल अवश्यमेव उसको विवश होकर भोगना पड़ता है, और पहले कर्मों या संकल्पों का ही फल दूसरे जन्म में भाग्य कहलाता है, तो इससे स्पष्ट प्रकट है कि भाग्य के कारण मनुष्य परतन्त्र वा बद्ध है और दूसरा अंश मनुष्य में स्वतंत्रता का, अर्थात् कर्म करने का है, जिस कर्म या कामना के करने से उसका आगामी भाग्य बनता है, और जिसके करने में वह बिलकुल स्वतंत्र है, चाहे उसको करे, चाहे न करे, और इसी कारण तत्त्ववेत्ताओं ने भी यह कहा है कि मनुष्य अपना भाग्य अपने हाथों बनाता है, क्योंकि यद्यपि मकड़ी में जाला तनने की शक्ति है, मगर जब तक उसने अपने मुँह से तार बाहर नहीं निकाले हैं, वह बिलकुल स्वतंत्र है, मगर जब वह निकाल दे, तो फिर उसमें बद्ध है। इसी तरह कर्म करने से पहले मनुष्य स्वतंत्र है, और जब कर दिया, तो उसके फल अर्थात् भाग्य को भोगने के लिये परतंत्र या बद्ध है। यह तो कुछ थोड़ा-सा एक व्यक्ति रूप से वा व्यष्टि भाव से स्पष्ट किया है, मगर जब समुच्चय रूप से या समष्टि भाव से देखा जाता है, तो और ही बात दिखाई देती है। हरबर्ट स्पेंसर साहब कहते हैं कि देश की अवस्था भी मनुष्य स्वयं अपने अनुकूल उत्पन्न कर लिया करता है।

यह बात ठीक है, क्योंकि जब थोड़ा विचारपूर्वक इन सब बातों पर समुच्चय रूप से दृष्टि डाली जाय, तो मालूम होता है कि वह नेपोलियन बोनापार्ट जो व्यष्टि रूप से स्वतंत्रापूर्वक काम करता दिखाई देता था, उस व्यक्ति को ठीक ऐसे समय पर, ऐसे जमाने में, आने की निस्संदेह आवश्यकता थी! इसलिये

जब समष्टि रूप से देखा जाता है, तो मालूम होता है कि कोई दैवी शक्ति प्रत्येक में छिपी हुई (निहित) है। उसी की बदौलत मनुष्यों का जन्म सदैव वहाँ होता है, जहाँ उनकी पहले आवश्यकता होती है, और उसी शक्ति की बदौलत सारे संसार में पुरुषों और स्त्रियों की संख्या भी एकसाँ रहती है। जिस प्रकार एक वस्तु में स्थिर (Positive) और अस्थिर (negative) दोनों प्रकार की बिजली एकत्र होती है, इसी तरह वह नियम जो इधर इच्छावाले उत्पन्न करता है, उधर उनकी इच्छाओं का पूरा करनेवाला भी उत्पन्न करता है। इस तरह से दोनों पलड़े बराबर तुले रहते हैं। इस नियम से सिद्ध होता है कि वह नेपोलियन बोनापार्ट, जिसको आप स्वतंत्र कह रहे हैं, इसी नियम की बदौलत जन्म लेकर आया है, अर्थात् जिसको स्वतंत्र कहा जाता था, वह भी एक शक्ति के अधीन होकर जन्म लेता है। इस प्रकार व्यष्टि रूप से तो यद्यपि वह स्वतंत्र दिखाई देता है, मगर समष्टि रूप से यदि देखा जाय, तो वह भी वैसा ही परतंत्र और बद्ध है जैसा कि व्यष्टि रूप से एक मनुष्य भाग्य की दृष्टि से परतंत्र या बद्ध कहलाता अथवा दिखाई देता था।

प्रश्न—अतः समष्टि रूप से जब यह सिद्ध है कि सब काम एक ही शक्ति (चेतन) के द्वारा होते हैं, अर्थात् एक ही चेतन सब कुछ करनेवाला है, तो फिर क्यों हरएक के मन में यह विचार उठता है कि "मैं स्वतंत्र हूँ ?" साथ ही आप किस प्रकार कहते हैं कि मनुष्य स्वतंत्र और परतंत्र दोनों है ?

दरमियाने-क़ारे-दरिया तख़्ता-बंदम करदई ;
बाज़ मी गोई कि दामन तर मकुन हुशियार बाश।

तात्पर्य—ऐ प्रभो ! गहरे दरिया में तूने स्वयं तो मुझे बाँधकर

फेंक दिया है, और फिर ऐसा कहते हो कि कपड़ा मत भिगो (अर्थात् लिपायमान मत हो) और होशियार रह।

उत्तर—यद्यपि द्वैत अर्थात् नानात्व के मानने वाले भी अभी तक इस प्रश्न का पूर्ण रूप से उत्तर नहीं दे सके, मगर वेदांत बड़े जोर से गरजकर प्रेम-पूर्वक प्रत्येक को यह उत्तर देता है कि प्यारो! यह भेद वा रहस्य, जो संसार-भर के दर्शनों और धर्मों से स्पष्ट नहीं हुआ और जिसका उत्तर देने में भेदवादियों की आँखें नीची हो जाती हैं, बताता है कि हाँ, वही परम स्वतंत्र जो प्रत्येक के भीतर बोल रहा है कि 'मैं स्वतंत्र हूँ,, और जो सबका अंतर्यामी है, और जिसके फुरने-मात्र से ही यह संपूर्ण जगत् बना हुआ है, वही सारे का सारा मनुष्य के भीतर मौजूद है, और वही मनुष्य का अंतरात्मा है, वही बाहर है। जैसे श्रुति कहती है —

"यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" ॥ (क० अ० २, मं० १०)

अर्थात्—जो यहाँ है, निःसंदेह वही वहाँ है, और जो वहाँ है, वही यहाँ है। इस स्थान पर जो भेद देखता है, वह निःसंदेह एक मृत्यु से दूसरी मृत्यु के मुँह में जाता है।

और यही भेद इस बात को अन्य श्रुतियों द्वारा स्पष्ट रीति से पुकार कर प्रकट कर रहा है कि जो बाहर है, वही आपके भीतर है। यथाः—

"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके;
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।"(ई० मं० ५)

अभिप्राय—हम चल हैं, हम चल हैं नाहिं, हम नेड़े हम दूर;
हम ही सबके अंदर चानन, हम ही बाहिर नूर।

और बहुत-सी श्रुतियाँ हैं, जो इस रहस्य को स्पष्ट रूप से खोलकर दर्शाती हैं। पर उन सबके लिखने से ग्रन्थ-के-ग्रन्थ भर

जायँगे, इसलिये इस समय केवल इतना ही समझा देना काफ़ी है।

अब जो वेदांत ने पहले बताया है कि मनुष्य में एक अंश स्वतंत्र और एक अंश परतंत्र है, उसके अर्थ केवल यही हैं कि उस परम स्वतंत्र स्वरूप आत्मा की दृष्टि से जो आपके भीतर सारे-का-सारा मौजूद है, आप स्वतंत्र हैं; और शरीर की दृष्टि से आप बिलकुल परतंत्र वा बद्ध हैं। शरीर को यदि कहो कि स्वतंत्र है, तो कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर की दृष्टि से उस पर कोई-न-कोई अधिकार रखनेवाला अवश्य रहता है। और फिर यह शरीर रोगादि व्याधियों के भी वश में रहता है, और पहले कर्मों के फल भोगने को भी विवश है, इसलिये शरीर किसी भाँति स्वतंत्र नहीं हो सकता, और न परिवर्तनशील होने के कारण स्वतंत्र कहा जा सकता है। हाँ, अगर आप स्वतंत्र कहे जा सकते हैं, तो उस परम स्वतंत्र स्वरूप के कारण से कहे जा सकते हैं, जो आपके भीतर उच्च स्वर से बोल रहा है कि 'मैं स्वतंत्र हूँ, मैं स्वतंत्र हूँ," और यही परम स्वतंत्र आत्मदेव, जो आपके भीतर से बोल रहा है, वही है, जो सब वस्तुओं में समा रहा है। इस समय वार्तालाप यद्यपि द्वैतवाली दिखाई देती है, मगर स्मरण रहे कि ऐसा बोलने का प्रयोजन केवल आपको ऊपर की ओर अर्थात् अद्वैत में लाने का है। पहले रहस्यों को समझाने के लिये, केवल द्वैत जाननेवालों के लिये, उन्हीं की बोली ग्रहण करनी पड़ती है, जैसे अध्यापक बच्चे को जब आरंभ से पढ़ाता है, तो उसे बच्चे के लिये केवल अलिफ़ को अफ़ल ही कहना पड़ता है। यद्यपि अध्यापक अलिफ़ की जगह अफ़ल केवल बच्चे के लिये बोल देता है, मगर अध्यापक का प्रयोजन लड़के को अलिफ़ कहलाने का होता है। इसी तरह अगर यहाँ एक आत्मा और एक शरीर या भीतर

समय आँखें कुछ देखना चाहती हैं, अर्थात् उस समय आँखों को प्रकाश अनुभव करने के लिये खुजली होती है। मगर जब इधर आँखों को प्रकाश का अनुभव करने के लिये खुजली होती है, तो उधर से झट ठीक स्थान पर खुजली को दूर करने के लिये सूर्य-रूपी हाथ आ जाता है। जैसे पहले बतलाया गया है कि जिसके बदन पर इधर खुजली होती है, उधर उसका ही हाथ उसको दूर करने के लिये भागता है, ऐसे ही इन दोनों का एक ही अवसर पर प्रकट होना सिद्ध करता है कि इन दोनों आँख (खुजली का स्थान) और सूर्य (खुजली दूर करनेवाला हाथ) के बीच में एक ही चेतन है। यह बात प्रत्येक को अपने-अपने अनुभव से सिद्ध हो जायगी कि जो लोग भीतर और बाहर एक ही आत्मदेव (अर्थात् एक मैं ही हूँ) के देखने का अभ्यास करते रहते हैं, उनमें व्यावहारिक रूप से अद्वैत या प्रेम आ जाता है, बल्कि उनकी ऐसी अवस्था हो जाती है —

> ख़ूँ रगे-मजनूँ से निकला फ़स्द लैला की जो ली ;
> इश्क़ में तासीर है पर जज़्बे-कामिल चाहिये ।

बल्कि जो व्यक्ति ऐसा अभ्यास बराबर करता रहेगा कि "मैं शरीर नहीं हूँ", "मैं परिच्छिन्न मन, बुद्धि, अहंकार आदि नहीं हूँ, किन्तु संपूर्ण शरीरों का स्वामी हूँ, और सब शरीरों में मैं ही फैला हुआ हूँ," तो उसको इसका अनुभव इस बात के प्रमाण में स्वयं साक्षी देगा कि हाँ, भीतर बाहर सब वस्तुओं में केवल एक ही चेतन आत्मदेव काम कर रहा है, और एक ही आत्म (जो वास्तव में 'मैं' है) संपूर्ण जगत् में फैला हुआ है।

. . . . .

पहले वर्णन हो चुका है कि विशेष साहस और दृढ़ता जहाँ पर बड़े ज़ोर से होते हैं, वहाँ स्वार्थपरता की गंध नहीं होती,

वहाँ कार्य अवश्य-अवश्य पूरे होते हैं। और जहाँ साहस और प्रयत्न कम होते हैं और स्वार्थ संग होता है, वहाँ सदैव असफलता रहती है। इस भेद के न समझने से कुछ महाशयों के चित्त में यह संदेह प्रायः उठता है कि निःस्वार्थ कार्य में क्यों सफलता होती है और स्वार्थ-पूर्ण कार्य में क्यों नहीं होती? इसका कारण वेदांत यह बतलाता है कि साहसी और स्थिर पुरुष नर-केसरी होता है और इसी कारण से वह मस्ती के मंदिर में रहता है, इसलिए वह एक अवस्था में ब्रह्मनिष्ठ होता है और बेख़बरी से व्यावहारिक रूप से उसके अपने स्वरूप में, जो मन से परे है, निवास होता है। और यही कारण है कि उसको सफलता प्राप्त होती है, क्योंकि उस अवस्था में केवल सत्यकाम और सत्यसंकल्पस्वरूप (आत्मदेव) से ही काम होते हैं। और जो हमारे शास्त्रों में लिखा हुआ है कि कर्मकांड से मन की शुद्धि होती है, इसका तात्पर्य भी केवल यही है कि जो व्यक्ति अपने कर्तव्य को भली भाँति निभा रहा है, वह कर्मकांड को निभा रहा है। पहले समय में और कोई काम इतना फैला हुआ न था, केवल यज्ञादि करने का काम जारी था। इसलिए उन दिनों सब लोगों के लिये नित्यप्रति यज्ञ करना ही हरएक का कर्तव्य था। मगर आजकल ऋषियों ने इस युग के अनुसार इन्हीं पहली वस्तुओं को संक्षिप्त रूप में उपासना, भक्ति और घर-बार के कामों के रूप में बदलकर आजकल के लोगों का कर्तव्य बना दिया है। इसलिये आजकल जो इन विधानों को ही अपने व्यवहार में लाता रहता है, वह कर्तव्य को पूरा कर रहा है, और इस तरह कर्मकांड को भली भाँति निभा रहा है; और जो व्यक्ति व्यावहारिक रूप में अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिये उद्यत है, वह व्यावहारिक रूप में संसार-क्षेत्र से परे जा रहा है, और

उसका निवास मन से परे होता जाता है। इस प्रकार से ज्यों-ज्यों वह बेख़बरी से मन से परे होता अपने स्वरूप में लीन होता जाता है, उतनी ही उसके मन की गति भी आत्मा की ओर होती जाती है, और उधर प्रवृत्त रहने से वह मन भी शुद्ध होता जाता है, और फिर वह ज्ञान का अधिकारी होता जाता है।

शंका—अगर ईश्वर अलग न होता, तो हमारी प्रार्थनाएँ, जो प्रायः स्वीकृत होती हैं, कदापि स्वीकृत न होतीं। और जब कि यह बात हम अपनी आँखों देखते रहते हैं कि हमारी प्रार्थनाएँ स्वीकार होती हैं, हम किस तरह आपके सिद्धांत को मान सकते हैं, जो कि हमारे निजी अनुभव के साफ़ विरुद्ध है?

उत्तर—राम का यहाँ कहना है कि प्रथम तो संपूर्ण मनुष्यों की प्रार्थनाएँ स्वीकार नहीं होतीं; हाँ, कुछ मनुष्यों की स्वीकार होती हैं; उनकी भी यदि इस बात में साक्षी ली जाय कि प्रार्थनाएँ किस समय और क्यों स्वीकार होती हैं, तो उनसे साफ़-साफ़ वेदांत के अनुसार यही उत्तर मिलेगा कि बेशक किसी व्यक्ति की प्रार्थना उस समय स्वीकार होती है, जब एक इष्टदेव को सामने रखकर प्रार्थना करनेवाले पर, संयोग से या बेख़बरी से, ऐसी अवस्था आ जाती है, जिसको प्रशंसा में एक कवि यों कहता है—

तू को इतना मिटा कि तू न रहे, और तुझमें दुई की बू न रहे;
जुस्तजू भी हिजाबे-इसनी है, जुस्तजू है कि जुस्तजू न रहे।
आरज़ू भी विसाले-परदा है, आरज़ू है कि आरज़ू न रहे।

या जिस समय कि उसका मन अपने स्वरूप (आत्मा) में डूबा हुआ होता है और जिस समय उससे 'मैं हूँ' और 'तू है' यह विचार दूर हुए होते हैं, अर्थात् जिस समय 'तू' 'मैं' से परे गया हुआ होता है, और ऐसे स्थान में पहुँचा

हुआ होता है कि जहाँ पर बुद्धि का भी यह हाल हुआ होता है —

अगर यक सरे-मूए बरतर परम ;
फ़रोग़े-तजल्ली बसोज़द परम ।

अभिप्राय—अगर मैं एक बाल के सिरे के बराबर भी और बढ़ूँ, तो उसके तेज से मेरे पर जल जायँ ।

उस समय प्रार्थना स्वीकार होती है, क्योंकि उस समय प्रार्थना करनेवाला अपने स्वरूप में डेरे लगाये हुए होता है, जो सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, जहाँ विचार उठते ही पूरा हो जाता है—अर्थात् उस समय उस छोटी 'मैं' या स्वार्थ से रहित होकर प्रार्थना होती है। दूसरे अर्थों में यह कि उस समय अपने यथार्थ स्वरूप सत्यकाम और सत्यसंकल्प से प्रार्थना निकलती है और उठते ही तत्काल पूरी होती है। न कहीं अलग शरीरधारी ईश्वर उसको सुनकर स्वीकार करता है, और न कोई इष्टदेव उपस्थित होकर स्वीकृति की आज्ञा प्रदान करता है, बल्कि आप ही 'एकमेवाद्वितीयम्' उस समय करते कराते हो ।

उन ऊपर लिखे हुए उदाहरणों से प्रकट हुआ कि अपना ही स्वरूप 'एकमेवाद्वितीयम्' जो संपूर्ण अन्य शरीरों का भी अन्तरात्मा है, और जो सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, उससे सारे संसार की प्रार्थनायें, कामनायें और संकल्प आदि पूरे होते हैं। किंतु आश्चर्य की बात केवल यही है कि जिसकी बदौलत यह सब सफलता हो रही है, उसके पाने की या उसके जानने की बिलकुल इच्छा या प्रयत्न नहीं किया जाता। एक कहानी है कि किसी राजा के असंख्य रानियाँ थीं। जो हर प्रकार से अपने राजा को प्रसन्न रखने में प्रयत्नशील रहती थीं। एक दिन राजा ने इन सब रानियों को बुलाकर कहा कि मैं

तुमसे बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिए मेरी राजधानी में जो वस्तु माँगो, मैं देने को तैयार हूँ। इस पर किसी ने मोतियों का हार माँगा, किसी ने असंख्य आभूषण माँगे, किसी ने राजधानी का कुछ भाग माँगा, किसी ने लाल पन्ने आदि माँगे; मगर केवल एक ने राजा की बाँह पकड़कर कहा कि मैं आपको माँगती हूँ, जिस पर वह सब रानियों से बढ़ गई, क्योंकि स्वयं राजा को माँगने से उसने सारे राज्य के स्वामी को अपना बना लिया था। इसी प्रकार वह आत्मदेव जिसकी शक्ति से सम्पूर्ण संसार स्थिर है और जिसकी शक्ति से संपूर्ण कामनायें पूरी होती हैं, उसको कोई विरले ही माँगते हैं, और शेष सब संसारी वस्तुओं को, जो बिलकुल तुच्छ, हीन और वास्तव में अवस्तु हैं, माँगते रहते हैं।

सिंध विषे रंचक सम देखें ;आज नहीं पर्वत सम पेखें।

अब प्रश्न यह होता है कि वह आत्मा जो सबको घेरे हुए है. उसके पाने की इच्छा न करने का कारण क्या है ?

उत्तर—इसका कारण यह है कि वह आत्मा कोई अन्य नहीं, वरन् सबका अपना आप है, इसलिए इच्छा नहीं होती। यदि कोई अन्य होता, तो उसके पाने की इच्छा भी होती। मगर यहाँ पर भी एक बात हर एक की समझ में नहीं आती कि शास्त्रों में जो आत्मानंद के प्राप्त करने की चर्चा बहुत जगह आई है, उसका तात्पर्य यह नहीं है कि जैसे बाहर के पदार्थों को अलग समझकर उनके पाने का प्रयत्न किया जाता है, वैसे ही आत्मा के आनंद को भी कहीं बाह्य वस्तु में समझकर उसके प्राप्त करने की जिज्ञासा की जावे, बलिक वहाँ शास्त्रों का यह प्रयोजन है कि आत्मानंद तो आपका सच्चा अपना आप है ही, मगर अज्ञान के कारण भाँति-भाँति की

कामनाओं और संकल्पों ने इसको तीक्ष्ण-स्वभाव बना दिया है। केवल इस तीक्ष्णता को ही दूर करना है। जैसे सिकंजबीन में भी मिठास होती है, पर सिरके की खटाई मिलने से मिठास जरा कम मालूम होती है। इसलिए खाँड की मिठास को अपनी असली हालत पर लाने के लिए केवल यह आवश्यक होता है कि उसमें से वह सिरके की खटाई दूर की जावे। ऐसे ही आत्मानंद तो आनंदघन है ही, मगर पदार्थों की कामना को भीतर प्रविष्ट करने के कारण जरा तीक्ष्ण-स्वभाव हो रहा है। केवल इसी तीक्ष्णता को, इच्छाओं के बंद करने से, निकाल देना आवश्यक है, जिसमें वह शुद्ध खाँड की भाँति आनंदघन अनुभूत होने लगे। इस आनंद के अनुभव करने की शैली यही है कि भविष्य में बाह्य पदार्थों की कामनायें बंद कर दी जावें और निज शरीर से जो प्रेम और मोह है, उसको दूर कर दिया जावे, क्योंकि शरीर के साथ संबंध रखने ही से उसे पालने-पोसने के लिये और पदार्थों के प्राप्त करने की कामनायें उठती रहती हैं। अतः शरीर के साथ बिलकुल संबंध न रखना और "मैं आत्मा ही हूँ, शरीर नहीं हूँ;" ऐसा दिन रात अभ्यास करना ही अपने आत्मानंद को उसकी आनंदघन अवस्था में लाना है; और यही अभ्यास या पुरुषार्थ आनन्द के प्राप्त करने का ठीक प्रयत्न है। इस प्रकार आत्मा अर्थात् अपने ही स्वरूप के घन आनंद का अनुभव करना ही आत्मा को पाना होता है, कोई बाहर से प्राप्त करना नहीं होता। किंतु आश्चर्य और शोक का स्थान केवल यही है कि जिस शरीर-संबंधी कामों के पूरा करने का विचार तक नहीं आना चाहिए था, बल्कि उन कामों को भाग्य पर छोड़ देना चाहिए था, अब उनके पूरा करने के लिये प्रयत्न किया जाता है और इस प्रकार शारीरिक भ्रांति

बढ़ाई जाती है; और जिस आत्मिक आनंद के पाने के लिये पुरुषार्थ करना था और शारीरिक भ्रांति दूर करनी थी, उसको केवल भाग्य पर छोड़ा जाता है। इस ढंग से उन्नति के स्थान पर अवनति होती है। उदाहरण में एक कहानी है।

एक मनुष्य को दो रोग थे, एक आँख (नेत्र) का दूसरा पेट (उदर) का। रोगी अस्पताल में गया और डाक्टर साहब को आँख और पेट दोनों दिखलाये। डाक्टर साहब से आँख के रोग को दूर करने के लिये सुरमा और पेट के रोग को दूर करने के लिये पाचन-चूर्ण लेकर लौट आया, मगर दुर्भाग्य से दोनों पुड़ियों को भूल से उलट-पलट कर दिया। दवाई खाने के समय सुरमे की पुड़िया तो खा डाली और चूर्ण आँख में लगा लिया, जिससे दोनों रोगों की दशा भयंकर हो गई। इसी तरह यहाँ भी इस विषय में सारे काम उलटे हो रहे हैं। क्योंकि जिस शरीर को केवल भाग्य पर छोड़ना था, उसके लिये पुरुषार्थ किया जाता है, अर्थात् आँख की दवा पेट में डाली जा रही है; और जिस आत्मानंद के पाने के लिये पुरुषार्थ करना चाहिए था, उसको केवल भाग्य पर छोड़ा जाता है, अर्थात् पेट की औषध आँख में डाली जा रही है। इस तरह से उन्नति के स्थान पर अवनति हो रही है। ऐसी दशा में क्योंकर आशा की जा सकती है कि आत्मिक आनंद हर एक को प्राप्त हो। प्यारो! यदि आनंद को प्राप्त किया चाहते हो, तो उसके पाने के वास्ते अनंत पुरुषार्थ करो अर्थात् कामना करना बंद करो और शरीर-सम्बन्धी कामों को केवल भाग्य पर छोड़ दो, क्योंकि शरीर-संबंधी काम तो भाग्य के अनुसार अपने आप हो ही जावेंगे। काम अगर है तो केवल यही है कि अपने आत्मा में लीन हो जाओ, अपने

स्वरूप में झंडे गाड़ दो, और अपने आत्मारूपी आनंद में मस्त होकर अपनी ईश्वरता की गद्दी को सँभाल लो। केवल आपके अपने स्वरूप को राजराजेश्वर के सिंहासन पर आसन जमाने की आवश्यकता है, तब सारे काम विना आपके संकेत के ही होते हुए दिखाई देंगे। जैसे जज साहब जब अपनी कचेहरी में आते हैं, तो उनका काम केवल कुरसी पर बैठ जाना और संसार के मुक़द्दमों को फ़ैसल करना होता है, शेष सब काम (कमरे को साफ़ करना, मेज़ पर दावात-क़लम रखना और वकील साहब तथा मुद्दई आदि को बुलवाना इत्यादि) अपने आप जज साहब के हाथ हिलाये विना ही होते रहते हैं। इसी तरह ब्रह्मनिष्ठ होने पर अर्थात् संपूर्ण विश्व के सम्राट् के सिंहासन पर इजलास करने के बाद मुक्त पुरुषों का काम केवल अपने स्वरूप के आनंद में मग्न रहना ही होता है, शेष संसारी काम मारे डर के प्रकृति अपने आप विना संकेत के करती रहती है। मगर भगवन् ! यह अवस्था तब ही होगी जब औषध अर्थात् पुरुषार्थ का उचित व्यवहार करोगे, अर्थात् शरीर को भाग्य पर और आत्मिक उन्नति को पुरुषार्थ पर छोड़ोगे।

एक बार रोम के लोगों ने ईसा से प्रश्न किया कि क्या हमें बादशाह को कर (ख़िराज) देना चाहिए या नहीं ? प्रश्न इस हेतु से था कि यदि महाराज ईसा यह आज्ञा देंगे कि ख़िराज नहीं देना चाहिए, तो झट रोम के बादशाह को ख़बर देंगे कि हज़रत ईसा लोगों को राजद्रोही बनाते हैं, और यदि वह अपने श्रीमुख से यह आज्ञा देंगे कि ख़िराज दे देना चाहिए, तो उनके इस वचन को "मैं" बादशाहों का बादशाह हूँ", या "मुझ पर ईमान लाओ", झूठा सिद्ध करेंगे। मगर महाराज ईसा ने

इसके उत्तर में एक रुपया हाथ पर रखकर उन प्रश्न करनेवालों से पूछा कि प्यारो! पहले यह बताओ कि इस रुपये पर मुहर किसकी लगी हुई है? लोगों ने उत्तर दिया कि क़ैसर की। अतः महाराज ने आज्ञा दी कि—

Render unto Caesar that belongs to Caesar,
Render unto God that belongs to God.

वे वस्तुयें, जिन पर क़ैसर अर्थात् रोम के बादशाह की मुहर लगी हुई है, क़ैसर के हवाले कर दो; और जिन पर ईश्वर की मुहर लगी हुई है, वह ईश्वर के हवाले कर दो। ऐसे ही भगवन्! पुरुषार्थ को कि जिस पर आत्मा की मुहर लगी हुई है, आत्मा के हवाले कर दो; और वह, जिसके ऊपर भाग्य की मुहर लगी हुई है, उस शरीर रूपी नक़दी को भाग्य के हवाले कर दो। जब एक मनुष्य उत्तम श्रेणी का काम करता है, तो उसकी अनुपस्थिति में निम्न श्रेणी के सब काम होते जाते हैं। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों पुरुष अपने पुरुषार्थ से अपने स्वरूप की ओर पग बढ़ाये जाता है, अर्थात् उत्तम श्रेणी का काम करता जाता है, संसारी शरीर, सम्बन्धी काम अर्थात् निम्न श्रेणी के काम अपने आप उत्तम रीति से पूरे होते जाते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ग़ैर मुल्कों के तजरुबे

"सत्यमेव जयते नानृतम्"

सत्य की ही हमेशा जय होती है, झूठ की नहीं। पुराणों में लिखा है कि "लक्ष्मी विष्णु की सेवा करती है, विष्णु के पाँव दाबती रहती है, अर्थात् लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है। लक्ष्मी विष्णु की छायावत् साथी है। विष्णु है, तो लक्ष्मी है। विष्णु नहीं, तो लक्ष्मी भी नहीं है।" यह बात बहुत ठीक है। विष्णु के अर्थ सत्य और धर्म के हैं, लक्ष्मी के अर्थ धन और जय के हैं। सो जहाँ सत्य और धर्म है, वहीं धन और जय है। जहाँ सत्य और धर्म नहीं, वहाँ धन और जय नहीं। वेदों में लिखा है "यतो धर्मस्ततो जयः"। अतएव यदि विष्णु रूपी धर्म की ओर आप बढ़ोगे, तो लक्ष्मी रूपी जय और धन आपकी छाया के समान आपके पीछे-पीछे फिरा करेंगे। पर विष्णु रूपी धर्म से विमुख होने पर यदि आप चाहोगे कि लक्ष्मी रूपी जय और धन प्राप्त कर लें, तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। सूर्य की ओर पीठ करने से अपनी छाया को कोई भी अपनी अनुगामिनी नहीं कर सकता। जितना ही दूर आप भागते चले जाओगे, छाया सर्वदा आगे ही भागती चली जायगी, और हाथ नहीं आयगी। पर जिस समय सूर्य की ओर मुँह कर लोगे, तो उसी समय छाया (लक्ष्मी) आपके पीछे हो जायगी और आपको छोड़ नहीं सकेगी। अतः जय और लक्ष्मी (धन) चाहनेवालों को सर्वदा सत्य और धर्म पर दृष्टि रखना चाहिये। हमारे हिन्दुस्तान की आजकल जैसी कुछ दशा

है, वह सब को विदित है। प्लेग-राक्षस हज़ारों आदमियों का सफ़ाया कर रहा है। अकाल लाखों आदमियों का ख़ून चूस रहा है। हैज़ा, चेचक आदि सैकड़ों बीमारियाँ करोड़ों आदमियों के प्राण ले रही हैं। कहाँ तक कहें, हिन्दुस्तान हर प्रकार से दुःखी है। हिन्दुस्तान की ऐसा शोकमयी दशा क्यों है? इसके उत्तर में राम यही कहेगा कि सत्य और धर्म का ह्रास व ह्रास हुआ है। हिन्दुस्तानियों की सत्य और धर्म पर श्रद्धा नहीं। हिन्दुस्तान में धर्म केवल बोलने के लिये है, व्यवहार में लाने के लिये नहीं।

अब राम हिन्दुस्तान और अमेरिका का मुक़ाबला करता है। अमेरिका हिन्दुस्तान के पैर के नीचे है। हिन्दुस्तान * में दाईं ओर से जाते हैं, अमेरिका में बाईं ओर से जाते हैं। हिन्दुस्तान में मन्दिरों या मकानों में जाने से पहिले जूता उतारते हैं, अमेरिका में टोपी उतारते हैं। हिन्दुस्तान में पुरुष घर का मालिक होता है और स्त्री पर हुकूमत करता है, अमेरिका में स्त्री घर की मालिक होती है, पुरुष पर हुकूमत करती है। हिन्दुस्तान में कुत्ता सबसे अपवित्र, और गधा सबसे बेवक़ूफ़ जानवर समझा जाता है। अमेरिका में कुत्ता सबसे पवित्र और गधा सबसे अक़्लमन्द समझा जाता है। वे गधे से बड़ी-बड़ी अक़्ल (बुद्धि) सीखते हैं। हिन्दुस्तान में उस किताब की बिलकुल क़दर नहीं होती, जिसमें कुछ भी

---

* दाईं ओर से जाने का रिवाज अमेरिका में और बाईं ओर से जाने का रिवाज भारतवर्ष में अभी थोड़े काल से हुआ है। पहले दाईं ओर से ही जाने का रिवाज भारतवर्ष में और बाईं ओर से चलने का रिवाज अमेरिका में था।

दूसरी किताबों का प्रमाण न हो; अमेरिका में उसी किताब की प्रतिष्ठा होती है, जो बिलकुल नई हो। हिन्दुस्तान में कोई आदमी ऐसा काम नहीं करता या करना चाहता, जिसका नतीजा वह अपनी आँखों के सामने न देख ले, यहाँ तक कि बूढ़े आदमी बग़ीचा लगाने में भी हिचकिचाते हैं, पर अमेरिका में यह बात नहीं है। वहाँ हर एक आदमी काम करता है और फल की इच्छा नहीं रखता। वे अपना फ़ायदा नहीं देखते, किन्तु मुल्क का फ़ायदा देखते हैं। जापान में एक अमेरिकन प्रोफ़ेसर था, वह बहुत बूढ़ा था, बारह भाषायें जानता था। इस आयु में रूसी भाषा पढ़ रहा था। राम ने उससे पूछा कि "आप अब रूसी भाषा पढ़कर क्या करेंगे?" उसने उत्तर दिया "मैंने सुना है कि रूसी भाषा में भूगोल सबसे उत्तम है, सो मैं रूसी भाषा को इस अभिप्राय से पढ़ रहा हूँ कि उस भूगोल को पढ़ूँ, और उसका अनुवाद अपनी भाषा में करूँ, ताकि हमारी ज़बान में भी अच्छा भूगोल हो, और हमारे मुल्क को फ़ायदा पहुँचे।" वह फल की इच्छा नहीं रखता था, पर इस बुढ़ापे में भी जो वह दूसरी भाषा पढ़ने का कड़ा परिश्रम कर रहा था, वह केवल अपने मुल्क के उपकार व फ़ायदा के वास्ते था। क्या हिन्दुस्तानी कभी अपने मुल्क के लिये ऐसा परिश्रम करता है? और फिर इस बुढ़ापे में? यहाँ तो मरने का बड़ा भय रहता है, इस मुल्कवालों (हिन्दुस्तानियों) को अकसर यह कहते सुनते हैं "मरना है, किसके लिये करना है?" तो भला हिन्दुस्तान की कैसे उन्नति हो?

हिन्दुस्तान में कोई आदमी अपने पूर्व पुरुषों से आगे बढ़ना ही नहीं चाहता, और जो आगे बढ़ता है, वह नास्तिक समझा जाता है, अर्थात् लोगों में उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती है,

अपने बाप-दादों की लकीर का फ़कीर न रहने से कलंकित किया जाता है; पर अमेरिका में उस आदमी की बिलकुल क़द्र नहीं होती, जो अपने बाप से दो क़दम आगे न बढ़ा हो। वहाँ प्रत्येक आदमी के हृदय में यही प्रबल इच्छा रहती है कि हमारे बाप-दादों ने जो कुछ किया है, उससे हमको अधिक करना चाहिए, जो हम उससे कम या बराबर ही हुए, तो हम नालायक़ ही हुए। जब कि दिल में ऐसे ख़्याल हैं, तब वे लोग उन्नति न करें, तो क्या हिन्दुस्तानी उन्नति करेंगे?

हिन्दुस्तानी अन्य देशों को जाने से अपना धर्म खोया हुआ समझते हैं, और विना दूसरे मुल्क गये उन्नति होती नहीं। यह बात सिद्ध ही है, क्योंकि अपने मुल्क की उन्नति के लिये यह ज़रूरी है कि दूसरे मुल्क की रस्म-रिवाज, रीति-नीति, कला-कौशल, आचार-विचार, विद्या और वैभव मालूम हों; पर ये बातें तब तक मालूम नहीं होतीं, जब तक उन मुल्कों में जाकर ख़ुद अनुभव न करें। परन्तु जब दूसरे मुल्कों को जाना ही हिन्दुस्तानी पाप समझते हैं, तो उन बातों का कैसे अनुभव कर सकते हैं? विना अनुभव किये उन्नति कैसे हो सकती है? अफ़सोस! हिन्दुस्तानी के ख़्याल में यह बात आ ही नहीं सकती कि दुनिया में क्या हो रहा है? हम लोग एक मकान के अंदर बिलकुल बन्द हैं। हम ख़्याल नहीं कर सकते कि मकान के बाहर कैसी सुगन्धित वायु चल रही है, कैसे विचित्र, मनोहर पुष्प खिले हुए हैं? प्रकृति का सौंदर्य कैसा सुख-प्रद है। इधर जब हिन्दुस्तान की ऐसी दशा है, तो अमेरिकावाले कभी घर पर नहीं रहते हैं। अमेरिका में उस आदमी का जन्म निष्फल समझा जाता है, जिसने कभी दूसरा मुल्क न देखा हो।

योरप के देशों की भी यही कैफ़ियत है। जर्मनी प्रवासियों का इस तरह का हिसाब है कि दस हज़ार मिश्र देश में, पैंतालीस हज़ार पेरिस में और आठ फ़ी सैकड़ा दुनिया के और हिस्सों में बराबर आते-जाते रहते हैं। कैसा ज़बरदस्त देशाटन है!

एक बार राम जर्मन के जहाज़ में सफ़र कर रहा था। राम जहाज़ की छत पर गया, और वहाँ कुछ ईश्वर के विषय में भजन गाने शुरू किये। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी, आसमान साफ था, प्रकृति की सुन्दरता देखने योग्य थी। एकान्त स्थान होने से राम ने ज़ोर-ज़ोर से गाना शुरू किया। राम अति आनन्द-दशा में था कि राम का गाना सुनकर उस जहाज़ का कप्तान और कितने ही मुसाफ़िर, जो कि प्रायः सब जर्मनी के थे, राम के पास आये और राम के साथ बातचीत करने लगे। सिवाय कप्तान के और आदमी अँगरेज़ी नहीं समझ सकते थे। राम अँगरेज़ी में बातचीत करता था और कप्तान अपने साथियों को अपनी भाषा में समझाता था। कप्तान हिन्दू और हिन्दू-धर्म के विषय में बातचीत करता था। उससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसको हिन्दू-धर्म्म के विषय में इतना अनुभव कहाँ से प्राप्त हुआ! पूछने से मालूम हुआ कि दुनिया भर के देशों के धर्म, विद्या और रस्म-रिवाज जानना वे अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं। और इसी अभिप्राय से वे लोग देशाटन करते हैं। राम ने उनसे पूछा—"इससे क्या लाभ होगा?" उसने उत्तर दिया—"सब मुल्कों के रस्म-रिवाज और धर्मों को जान कर जो-जो रस्म-रिवाज, विद्या और धर्म्म हमारे मुल्क को लाभ पहुँचाने योग्य समझे जायेंगे, उनका अपने मुल्क में प्रचार करेंगे। विद्या का प्रकाश सब मुल्कों से लेना चाहिए,

नहीं मालूम किस मुल्क में कौन-सी विद्या है। सब देशों की विद्या का प्रकाश हम अपने मुल्क में ले जायेंगे, तो हमारे मुल्क में महाप्रकाश हो जायगा।" अहो! अपने देश में प्रकाश फैलाने की, अर्थात् अपने देश की उन्नति करने की, यह कैसी नैसर्गिक विचार की भूमिका है। अहो! हिन्दुस्तानियो! आपकी कैसी शोचनीय दशा है? आपकी आँख कब खुलेगी? क्या कभी आपके हृदय में इन देव-तुल्य मनुष्यों के समान अपने मुल्क (स्वदेश) की भलाई, उन्नति और उपकार का ख्याल पैदा होगा? क्या कभी आप लोग भी इन जर्मनों के समान अपने देश में विद्याओं का महाप्रकाश करने की इच्छा से इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों में जाकर वहाँ से विद्या का प्रकाश लाओगे?

पहले जब हिन्दुस्तानियों को ग़ैर मुल्कों में जाने के लिए रोक नहीं होती थी और यहाँ प्रकाश था, तब हिन्दुस्तानी अपने मुल्क के प्रकाश से अन्य मुल्कों को प्रकाशित करते थे। पर जब से बाहर आने-जाने का मार्ग बंद कर दिया गया, तब प्रकाश भी बन्द हो गया और अँधेरा फैल गया। यहाँ से प्रकाश क्यों चला गया? प्यारे! एक मकान के भीतर, जिसमें प्रकाश आने-जाने के लिये खिड़की और दर्वाजे हों, बाहर के प्रकाश (सूर्य्य की किरणों) से जब खूब प्रकाश हो गया हो, और तुम इस अभिप्राय से उसकी खिड़की और दर्वाजे बंद कर दो कि भीतर का प्रकाश बाहर न जाने पावे, तो क्या उस मकान के भीतर प्रकाश कभी ठहर सकता है? कभी नहीं। ज्यों ही मकान का दर्वाजा और खिड़कियाँ बन्द होंगी, मकान के अन्दर अँधेरा फैल जायगा और बाहर से प्रकाश आना भी बंद हो जायगा। बस, हिंदुस्तान की भी यही दशा

हुई। बाहर आने-जाने के सब दर्वाज़े बंद कर दिये गये, सो नतीजा यह हुआ कि यहाँ जो कुछ प्रकाश था, वह भी बंद हो गया, और बाहर से प्रकाश आना भी बंद हुआ, और हिंदुस्तान में अँधेरा फैल गया। शास्त्रों में लिखा है कि विद्या-रत्न नीच से भी लेना चाहिये और सबको देना चाहिये। जितनी ही विद्या तुम दूसरों को दोगे, उतनी ही तुम्हारी विद्या बढ़ेगी और तरक़्क़ी पायेगी, किन्तु अफ़सोस है कि हिन्दुस्तानी दूसरों को विद्या देने में निहायत संकोच करते हैं और दूसरों से विद्या लेना भी नहीं चाहते। दूसरों की विद्या न सीखी जाय, इसके लिये समुद्र-यात्रा का निषेध हुआ। इस दशा में विद्या-रूपी प्रकाश का किस प्रकार प्रकाश रहता? अहो! ख़ुदग़र्ज़ी क्या किसी और चीज़ का नाम है? वेद और शास्त्र, जिनसे परमात्मा-विषयक ज्ञान होता है, किसी अन्य-देशीय को न पढ़ाये जायँ, ग़ैर मुल्कों में उनका प्रचार न किया जाय, क्या इससे परमेश्वर प्रसन्न होगा? क्या अन्य देश-निवासी परमेश्वर के बनाये मनुष्य नहीं हैं? परमात्मा ने सच्चे ज्ञान के भंडार (वेदों) को आप लोगों के पास सौंपा, ताकि मनुष्यों को उसका यथार्थ ज्ञान हो, और आप लोग अपना कर्तव्य भूल कर उनको अपनी ही सम्पत्ति समझने लगे, तो बताइये कि ईश्वर का कोप आप पर न हो, तो क्या हो? देखो, ईसाई लोग बाइबिल को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, उनकी नज़र में बाइबिल के अनुकूल न चलने से किसी को मुक्ति नहीं हो सकती, बाइबिल ही उनकी समझ से संसार के परित्राण करने का एकमात्र अवलम्बन या उपाय है, तो देखिये, ये लोग उसके प्रचार के लिये कितनी तकलीफ़ें उठाते हैं, कितनी जानें खोते हैं, कितने रुपये ख़र्च करते हैं। वे उदार मनुष्य

संसार को भ्रष्ट करने के लिये ऐसा नहीं करते हैं, किन्तु संसार की भलाई की इच्छा से ही ऐसा करते हैं। ईश्वरीय ज्ञान का सर्वत्र प्रचार करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। ओहो! परमात्मा उन पर ख़ुश न हो, तो किस पर ख़ुश हो? क्योंकि ईश्वर ने जो कुछ जैसा और जितना ज्ञान उनको दिया है, वे उसको जैसे का तैसा दूसरों को देने में संकोच नहीं करते हैं, किन्तु तकलीफ़ उठाकर, उनको विद्या पढ़ाकर, रुपया ख़र्च कर यहाँ तक कि प्राण गँवाकर भी ज्ञान देते हैं। पर हिन्दुस्तानियो! तुम्हारे पास जो कुछ सौंपा गया है, क्या तुम भी इन जगत्-हितैषी ईसाइयों के समान उसका संसार में प्रचार कर रहे हो? यदि नहीं, तो क्या ईश्वर तुम पर ख़ुश होता होगा? यदि कहो कि क्या मालूम कि ईश्वर ख़ुश होता है कि नहीं, तो क्या अभी तक तुम समझ नहीं सके कि ईश्वर का तुम पर कितना कोप हो रहा है? राज्य गया, लक्ष्मी गई, विद्या गई, प्रतिष्ठा गई, बल गया, पौरुष गया, और सर्वस्व गया, तो भी न समझे, तो अकाल आया, प्लेग वा महामारी आई हैज़ा आया, तो क्या अब भी समझ में नहीं आता कि ईश्वर हम पर कोप कर रहा है! प्यारो! सम्हलो, अभी सम्हलने का समय है!

परमेश्वर की दृष्टि में सब बराबर हैं, क्योंकि परमेश्वर ने सबको बनाया है। और यदि हम परमेश्वर को ख़ुश करना चाहें तो हमको चाहिये कि हम प्राणी-मात्र से प्रेम करें। भाई के मारने या उसके साथ वैर करने या उसको नफ़रत करने से बाप कभी ख़ुश नहीं हो सकता। तब क्या किसी मनुष्य को नफ़रत करने से या नीच समझने से परमेश्वर, जो

सबका पिता है, कभी ख़ुश हो सकता है? कदापि नहीं। ख़ाली मुँह से यह बात कहते जाना कि हम परमेश्वर को मानते हैं, उससे प्रेम करते हैं, काफ़ी नहीं है। आपको चाहिये कर्म द्वारा इसका सबूत दो। सबूत यही है कि आप मनुष्य-मात्र से प्रेम करें, प्राणी-मात्र से प्रेम करें, जगत्-मात्र से प्रेम करें, सबको बराबर और अपने ही बराबर समझें, अर्थात् यह ख्याल रक्खें कि जो कुछ मैं हूँ, वह वे हैं, और जो कुछ वे हैं, वह मैं हूँ, अर्थात् मैं और वे अलग-अलग कुछ नहीं, किन्तु एक ही हैं। चाहे कोई किसी जाति का हो, किसी देश का हो, किसी रंग का हो, इसकी परवाह मत करो। जाति-धर्म, मज़हब, देश और रंग से कुछ मतलब नहीं, आपको तो ईश्वर को खुश करने से मतलब है, अर्थात् अपना कर्तव्य पालन करना है। हाथ शरीर के सब अंग और प्रत्यंगों को सहायता पहुँचाता है। पैरों को, उपस्थ इन्द्रिय को या और किसी अंग को जब तकलीफ़ होती है, तब फ़ौरन् हाथ उनकी सहायता के लिये पहुँच जाता है। हाथ यह कभी विचार नहीं करता है कि पैर मुझसे नीचा है, गुदा आदि इन्द्रियाँ अपवित्र हैं, मुँह में थूक है, नाक में सींड है, कान के अन्दर मैल है, वह सम दृष्टि से सबको सहायता पहुँचाता है, और सबकी तकलीफ़ों को दूर करने का प्रयत्न करता है। यह कभी ख्याल नहीं करना चाहिये कि यह मुझसे नीच है या भिन्न मज़हब का है। अमेरिका में रविवार के दिन एक साहब से राम की मुलाक़ात हुई। उसकी मेम दूसरे मज़हब की थी, और वह दूसरे मज़हब का था (ईसाइयों के भी कई मज़हब हैं, कोई रोमन कैथोलिक और कोई प्रोटेस्टेंट कहलाते हैं), अर्थात् उसकी मेम (स्त्री) रोमन कैथोलिक थी और वह

प्रोटेस्टेंट था। वह अपने-अपने गिर्जों में तो गये, पर साहब पहले अपनी मेम को उसके गिर्जे में पहुँचा आया, तब अपने गिर्जे में गया, फिर अपने गिर्जे से अपनी मेम को लेने के लिये उसके गिर्जे में गया, और तब वह साथ-साथ घर आये। राम ने उस साहब से पूछा कि तुम स्त्री-पुरुष भिन्न मज़हब के हो, कैसे एक दूसरे से प्रेम करते हो ? उसने उत्तर दिया—"मज़हब का ईश्वर के साथ सम्बन्ध है और इसका (मेरी मेम का) और मेरा इस दुनिया का सम्बन्ध है। ईश्वर के सामने अपने कर्मों का उत्तरदाता मैं हूँ, और वह अपने कर्मों की उत्तरदात्री है, सो हमको विवाद करने से क्या मतलब ? हम दुनिया के सम्बन्ध से आपस में प्रेम करते हैं। साहब ने ठीक उत्तर दिया। ऐसा ही होना चाहिये। परन्तु हिन्दुस्तान में यदि स्त्री वैष्णव है और पुरुष शैव, तो उनके बीच कभी प्रेम नहीं होता है। अहो, कैसा अनर्थ है !

आप लोग (हिन्दुस्तानी) अन्य देशवासियों को नीच, म्लेच्छ आदि नामों से संबोधन करते हो और उनसे नफ़रत करते हो ; पर राम कहता है कि जिनको आप नीच समझते हो, वे उत्तम हैं, जिनको म्लेच्छ कहते हो, उनका हृदय पवित्र है, और वे आपसे प्रेम रखते हैं। उन लोगों में और भी इतना विशेष गुण है कि उनका देशानुराग इतना प्रबल है कि वे अपने देश के लिये खून बहा देने को हर समय तैयार रहते हैं। एक जापानी जहाज़ में कुछ हिन्दुस्तानी लड़के सफ़र कर रहे थे, वे लोग चौथे दर्जे में थे। चौथे दर्जे-वाले मुसाफ़िरों के लिए हिन्दुस्तानियों के मुआफ़िक़ खाने का उचित सामान न था। वे लोग भूखे ही रह गये। इतने में एक जापानी लड़के की नज़र उन पर पड़ गई, उसको मालूम

आ कि ये बेचारे हिन्दुस्तानी भूखे हैं। उस उदार, दयालु जापानी लड़के से न रहा गया, वह फ़ौरन् फ़र्स्ट क्लास (पहिले दर्जे के) कमरे में गया और वहाँ से फल और मेवे अपने पैसे लगाकर ले आया, और उनको उन भूखे हिन्दुस्तानियों के हवाले कर दिया। वे हिन्दुस्तानी लड़के बड़े खुश हुए, और उस कृपालु जापानी लड़के को क़ीमत देने लगे, परन्तु जापानी लड़के ने उचित आश्वासन और मधुर वचन द्वारा सबका सत्कार करके कीमत लेने से इन्कार किया, और फिर उसी तरह चार-पाँच रोज़ तक उनको बराबर मेवे और फल देता गया, और क़ीमत लेने से बराबर इन्कार करता गया। जब उनके जुदा होने का वक़्त आया, तो हिन्दुस्तानी लड़के उसका शुक्रिया (धन्यवाद) अदा करने लगे, और फिर क़ीमत देने लगे। उस जापानी लड़के ने फिर इन्कार किया और नम्रता-पूर्वक उन हिन्दुस्तानी लड़कों से कहा कि "प्यारे! मैं दाम तो नहीं लेता, मगर एक अर्ज़ करता हूँ, यदि आप उसको स्वीकार करो तो।" हिन्दुस्तानी लड़कों ने कहा—"आप फ़र्माइये तो।" जापानी लड़के ने कहा कि "मेरी यही प्रार्थना है कि जब आप लोग हिन्दुस्तान में जाओ, तो यह बात न कहना कि जापानी जहाज़ में हमको कष्ट हुआ था, वहाँ खाने का प्रबन्ध ठीक नहीं था; क्योंकि आप लोग ऐसा कहेंगे, तो हमारे मुल्क की बदनामी होगी।" अहो! कैसी मुहब्बत है! कैसा विमल देशानुराग है! वह लड़का न उस जहाज़ का मालिक था, और न उस जहाज़ में नौकर था। पर वह जहाज़ जिस देश का था, वह भी उसी देश का रहनेवाला था, इसी सम्बन्ध से उस जहाज़ की बदनामी को वह अपनी और अपने देश की बदनामी समझता था। यही सच्चा वेदान्त है,

इसी को सच्ची 'ब्रह्मविद्या' कहते हैं। क्या कोई हिन्दुस्तानी कभी ऐसा करता है? क्या किसी हिन्दुस्तानी ने ऐसा वेदान्त सीखा? क्या आप में से किसी को इस सच्ची ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हुई? अहो! यहाँ का वेदान्त, यहाँ की ब्रह्मविद्या तो केवल वाद-विवाद करने के लिये है, अमल में लाने के लिए नहीं। पर याद रखिए, जब तक ऐसी ब्रह्मविद्या अमल में नहीं लाई जाती, तब तक आपके देश की उन्नति नहीं हो सकती। अफ़सोस! वेदान्त और ब्रह्मविद्या तो हिन्दुस्तान में पढ़ी जायें, और जापान और अमेरिकावाले उसको अमल में लायें। अभी रूस-जापान के वर्तमान युद्ध में जापान-वालों को अपने किसी जहाज़ के डुबाने की ज़रूरत पड़ी। यह निश्चय था कि जो इस जहाज़ को डुबाने जायेंगे, वे भी डूबेंगे, क्योंकि उनके बचाने के लिए कोई उपाय नहीं था, तो भी जहाज़ के कप्तान ने एक नोटिस अपनी पल्टन में फिराया कि "हम अपने जहाज़ को डुबाना चाहते हैं, मगर जो उसको डुबाने को जाएगा, उसके बचने का उपाय नहीं, सो इस पर भी जिसको वहाँ जाना मंज़ूर हो, वह दरख्वास्त करे।" कप्तान का दफ़्तर दरख्वास्तों से भर गया। ऐसा कोई जापानी नहीं था, जिसने दरख्वास्त न दी हो। बाज़-बाज़ जापानियों ने अपनी अँगुली को काटकर ख़ून से अर्ज़ी लिखी, बाज़ों ने ऐसी धमकी की अर्ज़ी दी कि "यदि हमको न भेजा गया, तो हम फाँसी लगाकर मर जावेंगे।" अहो! मरने के लिए ऐसी उत्कंठा क्यों? प्यारो! उस जहाज़ को डुबाने से जापान को लाभ पहुँचता था, मुल्क के लाभ के मुक़ाबिले में वे अपने प्राण बिलकुल कुछ नहीं समझते थे। इधर हिन्दुस्तान में "आप मरा, तो जग मरा" की कहावत

है। अगर किसी हिन्दुस्तानी से यह कहा जाय कि तुम्हारे मरने से हिन्दुस्तानियों को राज्य मिलता है, तुम मरना स्वीकार करोगे ? तो क्या जवाब मिलेगा ? यह कि हम मर ही जाएँगे, तो राज्य आने से फ़ायदा ही क्या होगा ? उफ़् (हा शोक !) ! कैसा घृणित स्वार्थ भरा हुआ है ! प्लेग से दो लाख से ऊपर आदमी हर एक महीने में मर रहे हैं, हैज़ा आदि अन्य बीमारियों का हिसाब अलग है, पर हिन्दुस्तान में ऐसा कोई माई का लाल नहीं है, जो अपने इस क्षण-भंगुर शरीर को अपने देशोपकार-रूपी यज्ञ में हवन कर दे, अर्थात् देश की भलाई में अपने प्राण न्योछावर कर दे, या पसीना ही बहाये, या थोड़ी तकलीफ़ उठाए। अपने मुल्क के लिये प्राण न्योछावर करना एक तरफ़, पसीना बहाना एक तरफ़, थोड़ी तकलीफ़ उठाना एक तरफ़ रहा, पर हम लोगों से देश की बुराई न हो, तो उतनी ही ग़नीमत है। अभी एक हिन्दुस्तानी लड़का जापान में पढ़ रहा था। एक दिन वह स्कूल-लायब्रेरी (पुस्तकालय) से एक किताब अपने घर पढ़ने को लाया। उस किताब में एक नक़्शा था। जिसका बनाना उसको अत्यंत आवश्यक था। पर उस लड़के ने उस नक़्शे के बनाने की तकलीफ़ उठानी पसंद नहीं की और उस किताब से वह वर्क़, जिस पर नक़्शा बना हुआ था, फाड़कर अपने पास रख लिया। कितने दिन के पश्चात् एक जापानी लड़के ने वह फटा हुआ वर्क़ देख लिया। उसने प्रिंसिपल से रिपोर्ट कर दी। और यह क़ानून पास हो गया कि किसी हिन्दुस्तानी लड़के को लायब्रेरी से कोई किताब घर पर पढ़ने के लिये न दी जाय। अफ़सोस ! अपने ज़रा स्वार्थ के लिये या ज़रा अपनी तकलीफ़ को बचाने के लिये, उस हिन्दुस्तानी लड़के

ने अपने मुल्क के लिये कितना भारी नुक़्सान पहुँचाया है? आप लोगों से भी यह ग़लती होनी संभव थी। अहो! कैसे शोक की बात है कि हम लोग अपने तनिक स्वार्थ के लिये या ज़रा तकलीफ़ से बचने के लिये अपने मुल्क को भारी नुक़्सान पहुँचा देते हैं, और फिर आप भी तकलीफ़ उठाते हैं और नुक़्सान सहते हैं। देखिये, हांगकांग में अँगरेज़ों की एक मुसलमानी पल्टन थी। उस पल्टन के सिपाहियों की ४५) रु० माहवारी तनख़्वाह थी। दो सिक्ख सिपाहियों ने, जो ६), १०) रुपया माहवारी यहाँ पाते थे, एक अर्ज़ी सरकार को इस मज़मून की दी कि यदि हम लोगों की १५) रु० माहवारी तनख़्वाह की जाय, तो हम लोग ख़ुशी से हांगकांग चले जायेंगे। सरकार का तो इसमें लाभ था ही, सो सरकार ने उनकी अर्ज़ी मंज़ूर की और मुसलमानी पल्टन को नोटिस दे दिया कि जो सिपाही १५) रु० में रहना चाहें तो रहें, अन्यथा अपना नाम कटा लेवें। उस मुसलमानी पल्टन के किसी सिपाही ने १५) रु० माहवारी में रहना मंज़ूर नहीं किया और सबने अपने नाम कटा लिये। पश्चात् उन्होंने विलायत तक इस बात की लिखा-पढ़ी की, मगर नतीजा कुछ भी नहीं हुआ। भला सरकार को भारी ख़र्च करने से क्या मतलब था, जब कि थोड़े से ख़र्च में सरकार का काम चल जाता था। मज़बूत और बहादुर सिपाही भी मिल गये, ख़र्च भी कम हुआ, तो सरकार ऐसी बेवक़ूफ़ क्यों बनती, जो उन मुसल्मान सिपाहियों की अर्ज़ी पर ध्यान देती? ग़रज़, यहाँ सिक्ख सिपाही भरती हुए और मुसल्मान सिपाही सब बर्ख़ास्त हुए। नाउम्मेद (हताश) होकर वे मुसल्मान सिपाही आफ़्रिका में मुल्ला के देश में चले गये और उसकी पल्टन में भरती होकर उसको अँगरेज़ों के विरुद्ध

भड़काने लगे। मुल्ला उनकी पट्टी में आ गया और उसने अँगरेजों के विरुद्ध लड़ाई शुरू कर दी। अँगरेजों ने हांगकांग से यही पल्टन सिक्खों की उनके साथ लड़ने के लिये भेजी। उन मुसल्मान सिपाहियों को मालूम हो गया कि उनके मुक़ाबले में वही सिक्ख पल्टन आई है, सो पुराना वैर लेने के जोश में, उन्होंने खूब बहादुरी से लड़ना शुरू किया। उस सिक्ख पल्टन के कितने ही सिपाही मारे गये, कितने ही जख़्मी हुए, कितने ही उस रेगिस्तान की गरमी को न सह सकने के कारण मर गये, कितने ही बीमार हुए। मतलब यह कि प्रायः सभी तबाह हुए। प्यारो! देखो, जो जैसा करता है, वैसा फल पाता है। इन सिक्ख सिपाहियों ने अपने ५) रु० के स्वार्थ से उन मुसल्मान सिपाहियों का ४५) रु० का नुक़्सान किया था, उसका इनको यह फल मिला कि मारे गये, मर गये, जख़्मी हुए, बीमार हुए और तबाह हुए। उफ़ (हा शोक)! स्वार्थ कैसी बुरी बला है! यह (बला) पहले तो दूसरों को नुक़्सान पहुँचाती है, और फिर उसका अपना नाश करती है, जो इससे काम लेता है। प्यारो! जैसे इस शरीर के जीवन के लिये हाथ, पैर, नाक, आँख, कान, दाँत, जिह्वा आदि सभी इंद्रियों की आवश्यकता है, वैसे ही इस संसार के जीवन के लिये भिन्न-भिन्न जाति के सभी मनुष्यों की चाहे वह हिन्दू है, या मुसल्मान है या ईसाई है, या यहूदी अथवा पारसी है, आवश्यकता है। तब हम दुःख पहुँचावें, तो किसको पहुँचावें? नीचा समझें, तो किसको समझें? स्वार्थ करें, तो किससे करें? देखो, यदि आँख यह कहे कि देखती तो मैं हूँ और लाभ हाथ वग़ैरह का होता है, इसलिये देखना बंद कर दूँ; हाथ कहे कि काम तो मैं करता

हूँ और मजा मुँह उठाता है, इसलियें मैं काम करना छोड़ दूँ; पैर यह कहे कि सारे शरीर का बोझ मैं लिये फिरता हूँ, और ये सब मजे में रहते हैं, इसलिये फिरना छोड़ दूँ; इसी प्रकार अन्य सब इन्द्रियाँ कहें और अपना-अपना काम छोड़ दें, तो कहो, प्यारो ! कैसा जुल्म हो जाय ? क्या तब यह शरीर एक मिनट भी रह सकता है ? कभी नहीं। देखो, अगर आँख यह कहे कि जिस चीज को मैं सुन्दर देखती हूँ, उसको मैं अपनें ही पास रक्खूँ, और वह अपने ही पास रखने की कोशिश करे, तो क्या होगा ? पहले तो आँख के अन्दर वह समा ही नहीं सकेगी, यदि कोई छोटी चीज हुई, तो उससे आँख फूट जायगी। हाथ यह कहे कि जो चीज मैं कमाता हूँ, उसको मैं अपने ही पास रहने दूँ और अपने को चीरकर या छेदकर उसमें रख दूँ, तो क्या होगा ? वह पक जायगा, सड़ जायगा, और उसमें कीड़े पड़ जायँगे। इसी प्रकार और इंद्रियाँ भी तकलीफ़ उठायेंगी। जब यह बात बिलकुल सिद्ध है कि स्वार्थ स्वार्थी को ही कालान्तर में अधिक नुक़्सान पहुँचाता है, तो स्वार्थ से काम क्यों लेना चाहिये ? हिन्दुस्तानी लड़के ने स्वार्थ से किताब का वर्क़ (पत्रा) फाड़ा था, उसने खुद नुकसान उठाया और अपने मुल्क को नुक़्सान पहुँचाया। सिक्ख पलटन ने अपने स्वार्थ के लिये मुसलमान सिपाहियों को नुक़्सान पहुँचाया था, वे ख़ुद तबाह हुए। कहाँ तक कहें, स्वार्थियों ने अपने स्वार्थ के लिये खुद नुकसान उठाया और मुल्क को कितना नुकसान पहुँचाया है। इस बात की सैकड़ों मिसालें हिन्दुस्तान के इतिहास में मौजूद हैं। कौरव-पांडवों का सत्यानाशी युद्ध होना, मुसल-मानों का हिन्दुस्तान में राज्य होना, शाहजहाँ के लड़कों का

आपस में लड़ना, मुसलमानी बादशाहत का नाश होना, अँगरेज़ों का हिन्दुस्तान में राज्य की जड़ जमाना, मरहठों का क्षय, सिक्खों का नाश, अँगरेज़ों का तमाम हिन्दुस्तान का बादशाह होना, इत्यादि इन सब बातों पर यदि नजर डालोगे, तो मालूम हो जायगा कि हम हिन्दुस्तानी लोगों के स्वार्थ के कारण यह सब कुछ हुआ है। अगर हम लोगों में स्वार्थ न भरा हुआ होता, तो हिन्दुस्तान आज परदेशियों के पाँव पर न लोटता! ओह! स्वार्थ ने आपको किस दशा से किस दशा को पहुँचा दिया है? स्वर्ग से आपको रसातल में फेंक दिया, इनसान से आपको हैवान (पशु) बना दिया, शेर से आपको गीदड़ बना दिया है। तो क्या प्यारो! अब भी आप उसको नहीं छोड़ोगे?

हिन्दुस्तान में स्वार्थ का हमेशा से घर नहीं है। यदि आप अपने पूर्व पुरुषों के जीवन-चरित्र पर एक बार दृष्टि डालें, तो मालूम हो जायगा कि जिन ऋषियों की आप औलाद (सन्तान) हैं, वे कैसे निःस्वार्थी होते थे। दूसरे की भलाई के लिये, दूसरे के उपकार के लिये, वे महात्मा कैसे तन-मन-धन न्योछावर करते थे? और अपनी जान की भी परवाह नहीं करते थे। शरीर का मांस, शरीर की हड्डी तक दूसरों की भलाई के लिये दे देते थे। जब तक हिन्दुस्तान में ऐसे पुरुष होते रहे, तब तक हिन्दुस्तानी लोग चक्रवर्ती राज्य भोगते रहे, तब तक हिन्दुस्तान संसार में शिरोमणि गिना जाता रहा। पर जब से इस स्वार्थरूपी बला ने हिन्दुस्तान को घेरा है, तब से हिन्दुस्तान का पलड़ा उलट गया। सो यदि आप फिर सम्हलना चाहते हैं, तो एक दम से इस स्वार्थ को हिन्दुस्तान से निकाल दीजिए। मरते तो सब हैं, किन्तु हम लोग सिर्फ कालवश हो मरते हैं, और प्रकार

से हम मरना नहीं जानते। मरना जानते हैं जापानवाले, अमेरिकावाले और योरोपवाले, सो हम लोगों को भी उनसे मरना सीखना चाहिए। अमेरिका में एक बार साइंस की तरक्क़ी के लिये आवश्यकता हुई कि एक आदमी ज़िन्दा चीरा जाय, ताकि यह मालूम हो कि खून की हरकत किस वक़्त किस नस में कैसी होती है। मरे हुए आदमी को चीरने से यह बात मालूम नहीं हो सकती थी, क्योंकि मरे हुए आदमी में खून की हरकत नहीं होती। सो एक आदमी इस बात के लिए तैयार हो गया और वह चीरा गया। एक बार आँख के अन्दर के परदों के विषय में जानने की ज़रूरत हुई, एक आदमी ने अपनी आँख चिरवाई। तो क्या प्यारो! उन लोगों ने अपने फ़ायदे के लिए अपने शरीर व आँख को जिन्दा चिरवाया था? नहीं, सिर्फ मुल्क के फ़ायदे के लिये। उनका सिर्फ यह उच्च ख़्याल था कि हमारा यह नाशवान् शरीर मुल्क के काम आयेगा, तो इससे उत्तम सद्‌गति और क्या हो सकती है? हमारा शरीर व आँख चीरी जायगी, तो ये डॉक्टर लोग इस बात को सीख जाएँगे, जिसको बिना सीखे ये लोग दूसरे के शरीर व आँख को पूरा-पूरा फ़ायदा नहीं पहुँचा सकते हैं, तब ये लोग पूरा-पूरा फ़ायदा पहुँचा सकेंगे, और हमारा शरीर व आँख जिनसे अभी तक केवल हमारा ही फ़ायदा हुआ है, अब से प्रत्येक आदमी के शरीर और आँख के फ़ायदे के लिये होंगे, अर्थात् हमारा शरीर और आँख सबके शरीर और आँख के साथ मिल जाएँगे। अहो! क्या ही उत्तम ज्ञान है। प्यारो! आपको भी यह ज्ञान सीखना चाहिए। जब तक आपको ऐसा ज्ञान नहीं होता, आपकी हरगिज़ तरक्क़ी नहीं हो सकती।

यह बात भी नहीं है कि वे लोग मनुष्यों से ही प्रेम

करते हैं, किन्तु मांसाहारी होने पर भी वे प्राणी-मात्र से प्रेम करते हैं। अमेरिका का प्रेसिडेन्ट (राष्ट्रपति) एक बार दरबार को जाता था। रास्ते में उसने देखा कि एक सुअर कीचड़ में फँसा हुआ है। वह सुअर निकलने की जितनी ही ज़्यादा कोशिश करता था, उतना ही वह अधिक कीचड़ में फँसा जाता था। प्रेसिडेन्ट से न रहा गया, वह दरबारी कपड़ों सहित, जिनको वह पहरे हुए था, कीचड़ में कूद पड़ा और सुअर को निकाल लाया। पश्चात् वह कीचड़ से भरे हुए कपड़ों को पहिने हुए ही दरबार में चला गया। राष्ट्रपति की यह दशा देखकर दरबारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे राष्ट्रपति से नम्रता-पूर्वक इस विषय में दर्याफ़्त करने लगे। राष्ट्रपति ने सारा क़िस्सा बयान किया। दरबारी लोग बड़े खुश हुए और हज़ार मुख से प्रेसिडेन्ट साहब की प्रशंसा करने लगे। कुछ कहने लगे कि हमारे प्रेसिडेन्ट साहब ऐसे मेहरबान (कृपालु) हैं कि सुअर पर भी मेहरबानी (कृपा) करते हैं। और कोई कुछ कहने लगा और कोई कुछ। प्रेसिडेन्ट ने कहा कि मेरी झूठमूठ प्रशंसा क्यों करते हो; मैंने सुअर पर दया नहीं की, किन्तु उसको कीचड़ में बेतरह फँसा हुआ देखकर मुझे दर्द हुआ था, मैंने उस दर्द को मिटाया है, मैंने सुअर के साथ भलाई नहीं की है, किन्तु अपने साथ भलाई की है। क्योंकि उसके फँसने पर जो दुःख मुझे हुआ था, वह उसको निकालने से निकल गया अर्थात् दूर हो गया। अहा! सच्चे वेदान्त का यह क्या ही जीवित नमूना है कि प्राणी-मात्र के दुःख को अपना दुःख समझना, और प्राणी-मात्र पर दया करने से अपने ऊपर दया होती समझना, और प्राणी-मात्र का दुःख दूर करने से अपना ही दुःख दूर समझना। क्या कोई हिन्दुस्तानी राजा, रईस,

अमीर होता, तो वह उस सुअर को कीचड़ से निकालता ? कभी नहीं। तो विचार करो कि 'प्राणी-मात्र पर दया करना' जो आपका मुख्य धर्म है, सो आप अपने इस उदार धर्म से कितना भ्रष्ट हुए हो ? धर्म-भ्रष्ट तो हुए, पर धर्म-भ्रष्ट होने से जो-जो सजायें मिलती हैं, वह प्यारो ! आपको मिल रही हैं। और तब तक इस सज़ा से आप छुटकारा नहीं पा सकते, जब तक कि फिर उस उदार धर्म (प्राणी-मात्र पर दया करने) के अनुसार आप अपना आचरण नहीं बनाते।

मुसलमानी बादशाही के ज़माने में अँगरेज लोग जब हिन्दुस्तान में केवल सौदागर थे, फ़रु़ख़सियर बादशाह की लड़की बीमार हुई। हिन्दुस्तानी वैद्य, हकीम इलाज करते-करते थक गये, परन्तु शाहज़ादी को आराम न हुआ। इत्तफ़ाक़ से अँगरेज़ डाक्टर आया हुआ था, उसने दवा की, और दवाई से वह अच्छी हो गई। बादशाह बड़ा खुश हुआ, और डाक्टर को बड़ा भारी इनाम, ख़िलत और जागीर देने लगा। डाक्टर ने अर्ज की कि जहाँपनाह ! मैं कुछ नहीं लेना चाहता ; मगर हुजूर खुश हैं, तो अँगरेज सौदागरों के माल पर महसूल मुआफ़ फ़रमाया जाय। ऐसा ही हुआ। अँगरेज सौदागरों के माल पर महसूल मुआफ़ हुआ। अँगरेज डक्टर ने अपने फ़ायदे पर ख़्याल न किया, किन्तु अपने मुल्क के फ़ायदे पर किया। यदि वह अपने फ़ायदे पर ख़्याल करता और बादशाह के भारी इनाम को ले लेता, तो थोड़े दिनों के लिये वह अमीर हो जाता ; पर जब उसने मुल्क का ख़्याल किया, तो उसका सारा मुल्क ही अमीर हो गया। क्या हिन्दुस्तानी भाई से कभी यह उम्मेद हो सकती है ? ओह ! उन लोगों में कैसा स्वाभाविक वेदान्त है। तब वे लोग तरक़्क़ी न करेंगे, तो कौन

करेगा? इधर हिन्दुस्तानियों पर तो ठीक यह मिसाल चरितार्थ होती है कि एक साधु ने किसी मनुष्य को एक वस्तु दी। उस वस्तु का यह गुण था कि वह मनुष्य उस वस्तु से जो कुछ माँगेगा, वह उसको मिल तो अवश्य जायगा, मगर उसके पड़ोसी को उससे दूना मिला करेगा। उस मनुष्य ने धन माँगा,हाथी-घोड़े माँगे, गाय-भैंस माँगी, और जो कुछ माँगा, वह सब उसको मिल गया, मगर उसके पड़ोसी को उससे दूना मिला। पड़ोसी को दूना मिलने पर वह बहुत जलता रहा। एक दिन वह यह बात सोचता रहा कि इस वस्तु से क्या माँगें, जो पड़ोसी को दूना मिलने पर उसका अधिक नुक्सान हो। सोचते-सोचते उसके ख़्याल में यह बात आई कि अपनी एक आँख फूट जाय, इसलिये यही माँगना चाहिये कि मेरी एक आँख फूट जाय, क्योंकि तब पड़ोसी की दोनों आँखें फूट जायँगी। उसने ऐसा ही किया। उसकी एक आँख और पड़ोसी की दोनों आँखें फूट गईं, फिर उसने अपने एक हाथ और एक पाँव टूटने के लिये उस वस्तु से अर्ज की। उसका एक हाथ और पाँव टूट गया और उसके पड़ोसी के दोनों हाथ और पाँव टूट गये। इत्तफ़ाक़ से उसको लक़वा हुआ, और उसके रहे-सहे हाथ-पैर भी टूट गये, और आँख भी फूट गई। तब उसने उस वस्तु से दोनों हाथ, पैर और आँखें माँगी, पर यह प्रार्थना अस्वीकार हुई, क्योंकि पड़ोसी को उससे दूना मिलना था, मगर उसके चार हाथ, पाँव और आँखें नहीं थीं। तब उसने लाचार होकर अपनी एक आँख, हाथ, पाँव के अच्छे हो जाने की प्रार्थना की, यह स्वीकार हुई। उसके एक हाथ-पाँव और आँख अच्छी हो गई और पड़ोसी के दोनों। पड़ोसी जैसा का तैसा हो गया, मगर उस कमबख़्त

(दुर्भागी) की एक आँख फूटी की फूटी रह गई, और एक हाथ-पाँव टूटे के टूटे ही रह गये। सो प्यारो! विचार करो, जो अपने पड़ोसी की बुराई करता है, उसके लिए खुद बुरा होता है। पड़ोसी अपने मुल्कवालों को कहते हैं, सो अपने मुल्क की बुराई नहीं करनी चाहिये। बाइबिल में लिखा है कि अपने पड़ोसी को अपने बराबर प्यार करो, यद्यपि आपके शास्त्रों में और भी उदारता पाई जाती है, क्योंकि उनमें सारे जगत् को अपने बराबर प्यार करना लिखा है। बाइबिल के माननेवाले तो बाइबिल में लिखी हुई बात को अक्षर-अक्षर मानते हैं, और आप लोग अपने शास्त्रों में लिखी हुई इस बात को कि जगत् को अपने बराबर प्यार करो, एक हिस्सा नहीं मानते। यह कितनी लज्जा की बात है ? प्यारो ! जगत् को अपने बराबर प्यार नहीं कर सकते हो, तो अपने मुल्क को तो अपने बराबर प्यार किया करो। मुल्क को नहीं कर सकते हो, तो अपने कुटुम्ब को तो प्यार करो। यह क्या बात है कि आपने अपने कुटुम्ब ही में भेद कर रक्खा है। अपने कुटुम्ब से भी अगर आप भेद न रखते, तो आप एकदम इतना नीचे न गिरते, और आपकी दशा का चक्र एकाएक ऐसा पलटा न खाता।

भेद-भाव (द्वैत भाव) उन्नति के मार्ग में बड़ा ही अनिवार्य तीक्ष्ण काँटा है। क्योंकि परमेश्वर ने इस दुनिया में जितने पदार्थ बनाये हैं, उनसे यथार्थ लाभ उठाना ही मनुष्य की पूरी-पूरी उन्नति की अन्तिम सीमा है, परन्तु यह भेद-भाव (द्वैत भाव) का काँटा मार्ग में आ पड़ता है, और उस अन्तिम सीमा तक पहुँचने नहीं देता। यह किसी चीज को अग्राह्य, किसी को स्पर्शनीय, किसी को घृणित, किसी को नीच और

किसी को श्रेष्ठ समझता है। पर ऐसा समझना सर्वथा अज्ञान है, क्योंकि ऐसा समझने से उन चीज़ों से हम परहेज़ करने लगते हैं। फिर उनसे कोई न कोई होनेवाला लाभ, जो हमारी उन्नति का सहायक होता, नहीं हो सकता। इसलिये हमारी उन्नति में उतनी कमी पड़ती है, और यह कमी हमको उन्नति की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँचने देती। यह कमी किसी और प्रकार से भी पूर्ण नहीं हो सकती, चाहे उसमें कितना ही सादृश्य हो। गाय के दूध से हमको जो लाभ होता है, वह भैंस या बकरी के दूध से नहीं होता, और बकरी के दूध से जो लाभ होता है, वह गाय के दूध से नहीं होता; अतएव हमको अपनी पूरी-पूरी उन्नति करने के लिये ईश्वर-रचित हरएक पदार्थ की सहायता की अत्यन्त आवश्यकता है। और वह सहायता हम तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब भेद-भाव का सर्वथा नाश हो जाय। हिन्दुस्तान में भेद की बड़ी प्रबलता पाई जाती है। अमेरिका, जापान आदि में उतना भेद नहीं पाया जाता। यही कारण है कि हिन्दुस्तान उन्नति में इतना पिछड़ा हुआ है, और अमेरिका, जापान आदि इतना आगे बढ़े हुए हैं। हिन्दुस्तान में जिन चीज़ों की क़दर नहीं होती, जिन चीज़ों से कोई लाभ होने की आशा नहीं समझी जाती, अथवा जिन चीज़ों को छूने तक का इतना परहेज़ होता है कि गंगा-स्नान की ज़रूरत पड़ती है, उन चीज़ों से अमेरिका आदि मुल्कोंवाले आशातीत लाभ उठाते हैं। गधा और सुअर, जो हिन्दुस्तान की नजर से बिलकुल घृणित हैं, अमेरिका में बड़े काम आते हैं। मैला, जिसकी तरफ़ नजर पड़ने से ही क़ै (वमन वा उल्टी) हो जाती है, अमेरिका में अच्छी व्यापारिक चीज है। हड्डी, जिसके छू जाने-

मात्र से स्नान की जरूरत होती है, इतने फ़ायदे की चीज है कि सारी दुनिया को लाभ पहुँच रहा है। इसकी खाद जिस खेत में पड़ती है, वहाँ चौगुनी फ़सल पैदा होती है; इससे जो फ़ास्फ़ोरस निकलता है, वह संसार को लाभ पहुँचा रहा है। दियासलाई इसकी बनती है, और ष्टिकारक उत्तम दवा भी इसी से बनती है। बाल जिसको तुम तुच्छ (नाचीज) समझकर फेंक देते हो, उससे अमेरिका में खूब पैसा पैदा होता है। इसी प्रकार सब चीजें जो हिन्दुस्तान की नजर से घृणित, अपवित्र और अयोग्य समझी जाती हैं, उनसे दूसरे मुल्कवाले खूब फायदा उठाते हैं, और उनसे खूब कमा लेते हैं। उन मुल्कों में जब ऐसी-ऐसी चीजों से भी फायदा उठाते हैं और काम लेते हैं, अफ़सोस, हिन्दुस्तानी तो साधू लोगों से भी काम लेना नहीं जानते! हजारों, लाखों साधू पड़े हुए हैं. यदि उनसे काम लेते, अथवा उनसे फायदा उठाने की बुद्धि हिन्दुस्तान को होती, तो हिन्दुस्तान का बड़ा भारी उपकार हो जाता।

एक समय था, जब हिन्दुस्तानी लोग मनुष्यों के अलावा जानवरों से भी मनुष्य का काम ले लेते थे। भगवान् रामचन्द्रजी ने बंदरों की सेना बनाई थी, और ऐसी कामयाबी (सफलता) हासिल की थी कि आजकल के हिन्दुस्तान के मनुष्यों की सेना से भी वह कामयाबी हासिल नहीं होती। यदि रामचन्द्रजी बंदरों को बंदर कहकर ही ख्याल न करते और उनसे भेद-भाव रखते, तो रामचन्द्रजी को कितनी कठिनता उपस्थित होती। एक बलवान् शत्रु के साथ मुक़ाबला था, जिसकी असंख्य सेना थी, जिसकी धूम सुनकर ही तमाम भू-मंडल कलेजा थामकर रह जाता था। रामचन्द्रजी के

साथ सिवा भाई लक्ष्मण के न सेना थी और न खजाना था। यदि आदमियों की पलटन भरती करते, तो इतना धन कहाँ से आता? वह तो राज्य-भ्रष्ट और तिस पर वनवासी थे, सेना को तनख़्वाह देनी पड़ती, कमसरियेट का बन्दोबस्त करना पड़ता; तीर, कमान, गोला-बारूद का सामान करना पड़ता। पर प्यारो! इनकी जरूरत तो उनके लिए है, जिनकी दृष्टि में भेद है। रामचन्द्रजी को तो सच्ची ब्रह्म-विद्या की प्राप्ति थी, भेद-भाव का सर्वथा अभाव था। उनकी नजर में मनुष्य और बंदरों में भेद नहीं था। और यह कुदरत का कानून है कि जिसमें भेद-भाव (द्वैत भावना) का अभाव हो जाता है, उसके साथ सारी कुदरत भी भेद नहीं रखती, अर्थात् उसको अपना मित्र समझती है, और हर प्रकार उसकी सहायता करती है। सुतरां बंदर श्रीरामचन्द्र के मित्र हो गए, और बंदरों की एक बड़ी भारी सेना रामचंद्रजी के लिए मरने-मारने को खड़ी हो गई। उनको न तनख़्वाह की जरूरत, न कपड़ों की जरूरत, न अन्न की जरूरत, न तीर-कमान की जरूरत हुई। ऐसी सेना तय्यार करके चढ़ाई कर दी गई, और फतेह पाई। ओह! ब्रह्म-विद्या में कैसा जादू का असर है कि पशुओं और पत्थरों से भी वह काम लिया जा सकता है, जो असंभव प्रतीत होता है। अतः आप भी सच्ची ब्रह्म-विद्या के प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिये, क्योंकि अपनी पूरी-पूरी उन्नति के लिए हरएक चीज की सहायता की आवश्यकता है। और तब तक आप हरएक चीज से सहायता नहीं ले सकते, जब तक कि उनसे भेद रखते हो, या प्रेम नहीं करते, अर्थात् उनको अपने ही बराबर नहीं समझते। और तब तक आपका भेद दूर नहीं होगा, उनसे

प्रेम नहीं होगा, और उन सबको अपने बराबर समझना संभव नहीं होगा, जब तक कि ब्रह्म-विद्या का प्रकाश आपके हृदय में नहीं होता। सच्ची ब्रह्म-विद्या के प्रकाश होने से ही आप हरएक चीज़ से प्रेम करने लगोगे, और उनमें जो गुण हैं, जिनके बिना आपकी उन्नति का मार्ग अगम्य हो रहा है, उनको लेने में संकोच नहीं करोगे, तब आपकी उन्नति बेरोक-टोक होती चली जायगी, आप जो कुछ अपना खो चुके हैं, वह सब कुछ मिल जायगा, और आपकी उस शोचनीय दशा का पलड़ा एकदम पलट जायगा।

हम लोग गुण नहीं देखते, और गुण सबसे लेना चाहिये, चाहे आर्य्यसमाजी हो, हिन्दू हो, मुसलमान हो, ब्राह्म हो, या कोई और हो, क्योंकि गुणों की कमी सबमें है। क्या कोई आर्य्यसमाजी, हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्म या कोई और मज़हब-वाला यह कह सकता है कि हम सर्वगुण-सम्पन्न हैं? हमको किसी से किसी गुण के सीखने की आवश्यकता नहीं है? यदि कोई ऐसा कहता है, तो वह झूठ कहता है, क्योंकि सब गुण-सम्पन्न जाति कभी भी ऐसी बुरी दशा में नहीं रह सकती है। और आपमें से प्रत्येक व्यक्ति की जैसी बुरी दशा है, वह छिपी हुई नहीं है। सुतरां आपमें एक नहीं, वरन् कितने ही ऐसे बुरे दोष भरे हुए हैं कि जिनसे आपकी उन्नति रुकी हुई है।

हाँ, बिलकुल गुण-रहित जाति भी कोई नहीं होगी, कम से कम कोई न कोई गुण प्रत्येक जाति में ऐसा है कि जो दूसरी जाति को सर्वथा अनुकरणीय है। सो परस्पर एक दूसरे के गुणों को ग्रहण करने में त्रुटि नहीं करनी चाहिये। उन्नति का सबसे उत्तम तरीक़ा यही है कि गुण सबसे ले ले। अफ़सोस! हिन्दुस्तानी लोग इस तरीक़े को नहीं

बरतते, निरर्थक झगड़े-फ़साद और वाद-विवाद में अपना समय खोते हैं। आज शास्त्रार्थ हुआ, आज आर्य्यों की खूब पोल खोली गई, आज मुबाहिसा हुआ, आज हिन्दू-धर्म का पक्का खण्डन हुआ, कल मुसलमानों के खूब धुर्रे उड़ाये गये, आज जैनियों का परदा फ़ाश हुआ। वाह भाई, वाह! कैसी उम्दा दलीलों से अमुक साहब ने आज अमुक मज़हब का खण्डन किया? प्यारो! इन व्यर्थ के वाद-विवादों से क्या फ़ायदा हुआ और होगा, सिवाय इसके कि आपस में रंज पैदा हो, दुश्मनी बढ़े, और लोगों के दिलों पर बुरा असर पैदा हो। ओह! कैसे रंज की बात है कि आप लोग मज़हब को खण्डन करने की नियत से तो उस मज़हब की किताबें खूब ध्यान देकर पढ़ें, ताकि उन किताबों में जो कुछ दोष हों, वे आपको मालूम हो जायँ, और आप उन दोषों को सरे-आम सर्व-साधारण में कहकर उस मजहबवालों का मजाक़ उड़ाने का यत्न करें, पर आप कभी दूसरे मजहब की किताबें इस नियत से नहीं पढ़ते कि उनमें से जो अच्छी बातें हैं, उनको सीखें और अपनी उन्नति करें। आप लोग ज़ोंक की तरह हो गये हैं, जो स्तनों पर लगा देने पर भी दूध को छोड़ देती है, या कभी नहीं पीती, और हमेशा खून को पिया करती है। यह मजहबी झगड़ा हिन्दुस्तान में शीघ्रतम बन्द होना चाहिये। यह आपकी उन्नति का बड़ा जबरदस्त दुश्मन है, क्योंकि इन झगड़ों से आपस में रंज पैदा होता है, रंज के होने से दुश्मनी पैदा होती है। जब दुश्मनी हुई, तो आपस में प्रेम कहाँ! और जब प्रेम नहीं, तो प्यारो! आपस में एक दूसरे की सहायता नहीं होती। विना एक दूसरे की सहायता के किसी की उन्नति न हुई, न होगी! यदि अपनी उन्नति चाहते हो, तो

पहले अपना एक दिल करो, अथवा अपना वह दिल बनाओ, जो उन्नति पानेवालों ने बनाया है। यदि लैला पाने की इच्छा रखते हो, तो मजनूँ बनो, अर्थात् मजनूँ का-सा दिल बनाओ। ख़ाली ज़बान से यह कह देना कि मैं मजनूँ हूँ, मुझे लैला मिल जाय, काफ़ी नहीं है। आपको सबूत देना होगा कि आपमें और मजनूँ में कोई फ़र्क़ नहीं है। तात्पर्य यह कि मजनूँ ने लैला के लिये जितनी तकलीफें उठाईं, वे सब तकलीफें उसी के माफ़िक आपको उठानी होंगीं। लैला का लोभ देकर चाहे आपका शरीर चीरने के लिये कहा जाय, तो आपको खुशी से शरीर चिराना होगा; यदि आपको नदी में डूब मरने को कहा जाय, तो आपको नदी में डूब मरना होगा; यदि आग में जल मरने के लिए कहा जाय, तो आपको आग में जल मरना होगा; आपको लैला के लिये जंगल, पहाड़, रेगिस्तान में घूमने के लिये कहा जाय, या न कहा जाय, घूमना होगा; आपको ऊँच-नीच का विचार न करना होगा; ग़र्ज़ यह है कि जब तक आपको लैला नहीं मिलती, तब तक हज़ारों तकलीफें उठानी पड़ेंगी और उन तकलीफों पर ध्यान न देना होगा। इसी तरह पर प्यारो! आपको अपने मुल्क की उन्नति के लिये क्या नहीं करना होगा, तकलीफें उठानी पड़ेंगी; दुःख सहना होगा; जंगल-जंगल, पहाड़-पहाड़ में भटकना होगा; ऊँच, नीच का विचार नहीं करना होगा; और अपने शरीर को होम कर देना होगा। जब ऐसा करने के लायक़ आप होंगे, अथवा तैयार होंगे, तब स्वतः ही आपकी उन्नति होगी। आपके मुल्क की उन्नति होगी और सारे संसार की उन्नति होगी, क्योंकि ऐसा करना ही सच्ची ब्रह्म-विद्या है, और सच्ची ब्रह्म-विद्या ही से अपनी और संसार की उन्नति होती है।

जब अपनी जाति का ख़याल दृढ़ हो जाता है, तब किसी बात की कमी नहीं रहती है। यह कहने का मौक़ा नहीं रहता है कि हमारे पास रुपया नहीं है, हम कुछ नहीं कर सकते। जापानवालों ने विना रुपये ख़र्च किये ही परदेशों में जाकर इल्म हासिल किया है, और अपने मुल्क की तरक़्क़ी की है। उन लोगों ने यह तरीक़ा अख़्त्यार किया है। जब वे दूसरे मुल्कों को विद्या हासिल करने के लिये जाते हैं, तो अपने साथ धन इसलिये नहीं ले जाते कि अपना रुपया परदेश में नहीं जाना चाहिये, अपने मुल्क में ही रहना चाहिये। जब राम जापान से अमेरिका जाने के लिये जहाज़ में सवार हुआ, तो राम ने देखा कि ४० जापानी लड़के भी अमेरिका जाने के लिये जहाज में सवार हुए। उन लड़कों के पास न कुछ ख़र्च था और न जहाज का किराया। उन लड़कों में बहुत से तो अमीर घर के थे, और बहुत से ग़रीब घर के। पर ख़र्च किसी के पास नहीं था। धन्य जापानियो! तुम लोगों में कितना स्वदेशानुराग है? तुम लोगों में कैसी बुद्धि है? 'अपने देश का रुपया परदेश में न जाय', इस बात का तुमको कितना ख़याल रहता है, और इसलिये तुम कितनी तकलीफ़ें उठाते हो। ख़र्च न ले जाने की वजह से उन लोगों ने जहाज की नौकरी कर ली। कोई मशालची हुआ, कोई भिश्ती हुआ, कोई झाड़ू देनेवाला हुआ, कोई कोयला झोंकनेवाला हुआ, ग़र्ज सबके सब लड़के जहाज में नौकर हो गये, और इस तरह सब लोग जहाज के किराये से बच गये। अमेरिका पहुँचकर उन्होंने जहाज की नौकरी छोड़ दी, और ४० डालर देकर अमेरिका में रहने का पास ले लिया। अमेरिका में यह दस्तूर है कि ग़ैर मुल्कवाला जो वहाँ उनके देश में जाता है, उसको वह जहाज से तब

उतरने देते हैं, जब कि उसके पास ४० डालर देख लेते हैं। वे लड़के वहाँ इल्म सीखने गये थे, पर खर्च तो वे ले ही नहीं गये थे, कालेजों में वे किस तरह भरती होते? सो उन्होंने वहाँ मज़दूरी करनी शुरू की। किसी ने हल लगाना शुरू किया, किसी ने और मज़दूरी अख़्त्यार की। वहाँ मज़दूरों को छः रुपया तक प्रति दिन मज़दूरी के मिलते हैं। अतः वे लड़के मज़दूरी करके खूब रुपया पैदा करने लगे। अमेरिका में मज़दूरों के पढ़ने के लिये रात के स्कूल (Night schools) हैं, क्योंकि जो आदमी ग़रीब हैं और दिन के स्कूल में नहीं पढ़ सकते हैं, उन्हीं के उपकार के लिये रात के स्कूल का प्रबन्ध है, ताकि अपने गुजारे के लिये दिन में मजदूरी करें, और रात में पढ़ें। बहादुर जापानी लड़के भी उन्हीं रात के स्कूलों में भरती हुए। सो वे रात को इल्म हासिल करने लगे, और दिन में रुपया कमाने लगे। जब उनके पास कुछ रुपया जमा हो गया, और अँगरजी भी वे बोलने-समझने लगे, तब कालेज में भरती हो गये। जापानी लोग जिस मुल्क में जाते हैं, उस मुल्क की भाषा वे उसी मुल्क में जाकर पढ़ते हैं। सो वे मुख़्तलिफ़ क़िस्म के इल्म पढ़ने लगे। पश्चात् पास होकर अपने देश को आये, और इल्म के साथ-साथ रुपया भी पैदा कर लाये। यह देखो, जापानियों की बुद्धि, स्वदेशानुराग और कष्ट-सहिष्णुता कैसी अनुपम है! स्वदेशानुराग कि अपने देश का धन अपने ही देश में रहे, यहाँ तक कि अपने फ़ायदे के लिये भी यदि दूसरे मुल्क में जाना पड़े, तो भ जहाज, रेल के किराये में भी अपना रुपया परदेश में न जाय, और कालेजों की पढ़ाई का खर्च तो अलग रहा, वरन् अपने देश के पैसे से एक किताब तक भी न खरीदी जाय; खाने-पीने में अपना पैसा

ख़र्च करना तो अलग रहा, उलटा वहाँ से पैदा करके अपने मुल्क को रुपया एकत्र करके लाया जाय; और अपने मुल्क की भलाई के लिये सबसे बड़ी बात यह की जाय कि दूसरे मुल्कों से वे 'उत्तम विद्या' सीख कर आयें कि जिसकी अपने मुल्क में निहायत ज़रूरत है, और जिस पर अपने देश की उन्नति निर्भर है। बुद्धि से वे लोग कैसे जल्दी उस तरीक़े को सोच लेते हैं, जिससे उनकी उन्नति हो। किराये से बचने के लिये ही उन्होंने कैसा अनोखा कौशल किया था कि सफ़र भी हो गया, किराया भी न पड़ा, उलटा कुछ रुपया हाथ आ गया! हमको संदेह है कि दुनिया के किसी और मुल्क के आदमियों की ऐसी बुद्धि हो। भला दुनिया में ऐसा कौन मुल्क है, जिसने पचास वर्ष के अंदर ऐसी आशातीत उन्नति की हो, जैसे जापान ने की है? यही उनकी विचित्र बुद्धि का अनुपम दृष्टांत है। यह उनके असली दन्ती होने का सुखद, सुधामय, मधुर फल है। ऐसी कष्ट-सहिष्णुता कि अमीरों के लड़के भी झाड़ू वग़ैरा नीच और खेती वग़ैरा मुश्किल काम करने में न शर्मिन्दा हों, और न तकलीफ़ समझें, किन्तु दिन में खेती वग़ैरा की कठिन मेहनत करें और रात में करें गंभीर पढ़ाई, अर्थात् शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के परिश्रम करें और कभी न थकें! प्यारो! जापान में ऐसा देशानुराग है, ऐसी विचित्र बुद्धि है, ऐसी कष्ट-सहिष्णुता है, तब जापान जैसी और जितनी उन्नति चाहे, वह वैसी और उतनी ही तरक़्क़ी कर सकता है। उधर जब जापान के लोग अपने मुल्क की उन्नति के लिये ऐसे-ऐसे यत्न और विचारों से काम ले रहे हैं, इधर तब हिन्दुस्तान के लोगों की अजब कैफ़ियत है। पहले तो

दूसरे मुल्कों को जाना ही हिन्दुस्तान की नज़र में पाप है, तिस पर भी यदि किसी ने हिम्मत की और उसको पाप न भी समझा, तो उसको आला दर्जे का सामान चाहिये। वह जापानियों की तरह मजदूर होकर कभी दूसरे मुल्क नहीं जायगा। उसके लिये जहाज में अव्वल नम्बर का कमरा और सामान चाहिये। वह जापानियों की तरह दिन में खेती करके और रात को पढ़कर इल्म हासिल नहीं करेगा। किन्तु उसके लिये फ़ीस, खाने-पीने के खर्च के लिये कम से कम १५ हज़ार रुपया चाहिये। वह जापानियों की तरह उस मुल्क से इल्म के साथ-साथ रुपया पैदा करके तो नहीं लावेगा, किन्तु पहले तो इल्म भी अधूरा लावेगा, अर्थात् उसमें पास नहीं होगा, और १५ हजार रुपये के अलावा और कई हजार क़र्ज करके भी लावेगा। वह जापानियों की तरह उस मुल्क से वह इल्म पढ़कर न लावेगा, जिसकी अपने मुल्क में निहायत जरूरत है, जिससे अपने मुल्क के ग़रीब व अमीर को फ़ायदा पहुँचे, किन्तु वह ऐसा इल्म सीख कर आवेगा, जिसकी अपने मुल्क के लिये कोई जरूरत नहीं, और जिससे अपने मुल्क के अमीर और ग़रीब सब तबाह हों। अर्थात् वहाँ से बैरिस्टर बनकर आवेगा और ग़रीब अमीरों को लड़ा कर उनका रुपया खूब उड़ावेगा। उन रुपयों को यदि अपने ही घर में जमा रखता, तो कुछ न कुछ अच्छा ही था; पर वह उन रुपयों को अपने साहिबाना ठाट रखने में खर्च करेगा। और साहिबाना ठाट के लिए बिलकुल विलायती चीज़ की जरूरत है, कमरा सजाने के लिये विलायती सामान, पहरने के लिए विलायती कपड़ा, खाने के लिए विलायती खाना, बोलने के लिए विलायती भाषा, कहाँ तक कहें जूता विलायती,

कुर्ता विलायती, चाल-चलन विलायती, सो सब रुपया जो वह कमाता है, वह विलायती हो जाता है। इस तरह पर जो हिन्दुस्तानी विलायत गया भी, तो उससे विलायत का ही फ़ायदा होता है, हिन्दुस्तान का तो नुक़्सान ही है। इसके अतिरिक्त वह विलायत से लौटकर जापानवालों की तरह कभी मुल्कवालों को प्यार नहीं करेगा, बल्कि अपने मुल्कवालों को असभ्य, बेवक़ूफ़ और जङ्गली ख़याल करेगा और उनके साथ उठने-बैठने व बोलने-चालने में भी शर्म मानेगा; तो कहिये, हिन्दुस्तान की किस तरह तरक़्क़ी हो?

हिन्दुस्तान की तरक़्क़ी के लिये इस बात की जरूरत नहीं है कि हिन्दुस्तान के लोग विलायत में जाकर बैरिस्टरी पास करके आवें, किन्तु इस बात की जरूरत है कि वे लोग कृषि-विद्या सीख कर आवें, और हो सके, तो और हुनर भी सीख कर आवें, जिससे अपने मुल्क को फ़ायदा हो, अपने मुल्क का पैसा अपने मुल्क ही में रहे, और दूसरे मुल्क का भी रुपया अपने मुल्क में आवे। दूसरे मुल्क का रुपया इस मुल्क में तभी अधिक आवेगा, जब कृषि-विद्या की तरक़्क़ी होगी। और-और हुनरों में हिन्दुस्तान दूसरे मुल्क की बराबरी नहीं कर सकता, क्योंकि दूसरे मुल्कवाले उन बातों में बहुत बढ़ गये हैं, कृषि-विद्या से हिन्दुस्तान की आमदनी का सिलसिला बढ़ सकता है, सो हिन्दुस्तान के लिये कृषि-विद्या की ओर विशेष ध्यान देने की अत्यंत आवश्यकता है। इस विद्या की तरक़्क़ी के लिये अमेरिका जाना होगा। वहाँ सब विद्या पढ़ाई जाती हैं। इँगलैंड में कृषि-विद्या की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि वहाँ और-और हुनरों की अधिकता है, और आबादी बढ़ जाने के सबब से खेती भी कम है। हिन्दुस्तान में कृषि-विद्या

की पाठशाला पहले तो है ही नहीं, अगर कहीं है भी, तो ठीक नहीं है। यहाँ पढ़ाई का कुछ और ही ढंग है, किताबों में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह अमल में नहीं लाया जाता। यहाँ पढ़ाना कुछ और, अमल में कुछ और। वहाँ स्कूल में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह अच्छी तरह अमल में भी लाना सिखाया जाता है।

अमेरिका में सब प्रकार की पढ़ाई का एक विचित्र ढंग है। चाहे किसी कला-कौशल की पाठशाला को देखिये, अमली कार्यवाही उनका मुख्य उद्देश्य होगा, और वीररस का सर्वदा समावेश रहेगा, यहाँ तक कि मजहबी स्कूलों में भी वीरता भरी शिक्षा दी जाती है। राम का निमन्त्रण एक बार मजहबी स्कूल में हुआ। जब राम वहाँ गया, तो पहले लड़कों ने 'हुर्रा-हुर्रा' के शब्दों से आदर किया। फिर राम का व्याख्यान आरंभ हुआ। जब व्याख्यान खतम हुआ, तो लड़कों ने परेड दिखाई. जो बिलकुल जंगी क़वायद के समान थी। राम को शंका हुई और प्रिंसिपल से दर्याफ़्त किया कि मजहबी स्कूल में जंगी क़वायद का क्या काम है? उसने जवाब दिया कि मौत का सामना तो सबसे पहिले हमको ही करना पड़ता है। जब हम किसी मुल्क में उपदेश करने के लिये जाते हैं, तो हम लोगों पर ही सबसे पहले मौत का क़हर बरसता है। हम लोगों की जान ही पहले बरबाद होती है। यदि इनके दिलों में वीरता न भरी जाय, तो ये लोग किस तरह दूसरे मुल्क में धर्म्मोपदेश करने के लिये जा सकते हैं। इसलिये इनके दिलों से मौत का खटका निकाल दिया जाता है, जिससे असभ्य (जंगली) मुल्कों में जाने के लिये ये लोग संकोच (पशोपेश) न करें, उनको बहादुरी के साथ धर्म्मोपदेश करें, यदि मारे

जायँ, तो परवाह न करें। सच्चे धर्म के प्रचार करने में जान चली जाय, परवाह नहीं, परन्तु धर्म का प्रचार सर्वत्र करना चाहिये। प्रिंसिपल साहिब के इस उत्तर से हमको कैसा अच्छा सबक़ मिलता है कि "हमको धर्म-प्रचार करने के लिये अपनी जान का ख़्याल नहीं रखना चाहिये। और सर्वत्र धर्म का प्रचार करना चाहिये।" अफ़सोस! जब दूसरे मुल्कवाले धर्म के प्रचार करने में जान की बाज़ी लगा रहे हैं, तब हिन्दुस्तानी अपने भाई को भी धर्म्मोपदेश करने से जी चुराते हैं, तो क्यों न धर्म का ह्रास व ह्रास हो, क्यों न धर्म की हानि हो, क्यों न धर्म की ग्लानि हो?

इसलिये हिन्दुस्तान धर्म-भ्रष्ट होने से मान-भ्रष्ट भी हुआ है। कैसे रंज की बात है को हिन्दुस्तान अपने उस सच्चे धर्म (वेदान्त) को भूल गया है, जो संसार की एकता को सिखाता है, जिस धर्म ने उसको उस ऊँचे आसन तक पहुँचा दिया था कि जहाँ तक पहुँचने की बात सुन कर इस ज़माने के पंडित दाँतों तले उँगली दबाते हैं। वह भी समय था, जब हिन्दुस्तान में धर्म का ऐसा प्रभाव था कि बिना धर्म-विचार के हिन्दुस्तानी कोई काम ही नहीं करते थे। उनका खाना धर्म के लिये, सोना धर्म के लिये, पहरना धर्म के लिये, उठना-बैठना धर्म के लिये, ब्याह-शादी धर्म के लिये होती थीं, अर्थात् बिना धर्म के हिन्दुस्तानी कोई काम नहीं करते थे। जिस काम का धर्म से वास्ता नहीं, उस काम से हिन्दुस्तानियों को भी वास्ता नहीं होता था। वे लोग धर्म के लिये जङ्गल-जङ्गल फिरने, भूखे-प्यासे मरने, पहाड़ों-पहाड़ों में टकराने, गरमी-सर्दी को सहने और भारी-भारी कष्ट उठाने ही में आनन्द समझते थे। धर्म के सिवा

वे स्वर्ग के सुख को नरक की सामग्री समझते थे। मछली के जीवन के साथ पानी का जैसा सम्बन्ध है, उनके जीवन के साथ धर्म का भी वैसा ही सम्बन्ध था, अर्थात् धर्म ही उनका जीवन और धर्म ही उनका आधार था, धर्म ही उनका उद्देश्य था! वे धर्म-वीर थे और भीरु थे। धर्म-वीर इसलिये कि वे धर्म के लिये अपने शरीर को भी कुछ नहीं समझते थे, और धर्म भीरु इसलिये कि सर्वदा प्रत्येक काम के करने में डरते रहते थे कि कहीं धर्म की हानि न हो। अपने शरीर के साथ वे जैसा बर्ताव करते थे, दूसरे के शरीर के साथ भी उनका वैसा ही बर्ताव होता था। वे अपने में और दूसरे में भेद नहीं समझते थे। उनकी नज़र में संसार के सभी प्राणी बराबर थे। सबको ही धर्मात्मा होना, सबको ही धर्मोपदेश देना, वे चाहते थे। सब की ही भलाई करना उनका नित्य कर्म था। पर अब ज़माना (समय) पलट गया है। हिन्दुस्तानियों का धर्म अब केवल किताबों में रह गया है। हिन्दुस्तानियों का धर्म अब सिर्फ़ विवाद में काम आता है, हिन्दुस्तानियों का धर्म अब सिर्फ़ बातूनी जमा-खर्च का रह गया।

हिन्दुस्तानी अब न धर्म-वीर रहे, न धर्म-भीरु, क्योंकि धर्म के लिये अपने शरीर की परवाह न करना तो एक तरफ़ रहा, जो कोई उनके घर में आकर उनके धर्म की निन्दा करने लगे, तो भी वे कान नहीं हिलाते हैं; और यदि आप स्वयं बड़े-बड़े अनर्थ भी कर बैठें, तो उन्हें डर नहीं होता कि हम कैसे धर्म-हीन हो रहे हैं, हम धर्म पर कैसे लात मार रहे हैं? प्यारे हिन्दुस्तानियों! हिन्दुस्तानी अपने बेनज़ीर शास्त्रों की ओर ध्यान नहीं देते, विचार नहीं करते, मनन नहीं करते। ओह! आपको मालूम नहीं है कि आपके पूर्वजों ने आपके लिए

कैसे अक्षय ख़ज़ाने का संग्रह रख छोड़ा है। ऐसे ख़ज़ाने के पास होने पर भी प्यारो ! भूखे मत मरो, ठोकरें मत खाओ, इधर-उधर मत भटको। इस ख़ज़ाने का उचित व्यवहार करो, उचित रीति से ख़र्च करो, देखो और विचारो कि इस दौलत पर सारी दुनिया का हक़ है। आप केवल इस बात के एजेन्ट बनो कि इस ख़ज़ाने की बाबत सारी दुनिया को सूचित कर दो कि हमारे पास हम तुम सबके लिए ख़ज़ाना सौंपा गया है; आओ, हम सब मिलकर उससे फ़ायदा उठावें, और आप भी उस दौलत से फ़ायदा उठाओ, और दुनिया को भी उठाने दो, किसी से भी उस ख़ज़ाने को मत छिपाओ, नहीं तो विश्वासघात के दोष में पकड़े जाओगे, और ख़ज़ाना भी आपके पास नहीं रहेगा, क्योंकि उस ख़ज़ाने की यही तासीर है कि जो उसको छिपा रखता है, उसके पास से वह निकल जाता है। केवल संदूक़ रह जाता है, माल चला जाता है। शरीर रह जाता है, प्राण चला जाता है। सो आप देख ही रहे हो कि आपके पास सिर्फ़ नक़ल बाक़ी रह गई है और असल का पता नहीं है। आपके धर्म की असलियत जापान, अमेरिका आदि मुल्कों को चली गई है। आपके पास सिर्फ़ नक़ल बाक़ी है। आपके धर्म का वृक्ष खोखला हो गया है। अब भी अगर बहुत जल्दी उसका उपचार नहीं करोगे, उपाय नहीं करोगे, विचार नहीं करोगे, तो जो संदूक़ आपके पास है, वह टूट-फूट जायगा, शरीर भी सड़-गल जायगा, वृक्ष भी गिर जायगा, नक़ल भी उड़ जायगी। और आप मधु-मक्खी की तरह हाथ मलते और सिर पटकते रह जाओगे।

इस ख़ज़ाने को बहुत दिनों छिपाकर आप सैकड़ों तकलीफ़

सह चुके हो, हज़ारों नुक़्सान उठा चुके हो, अपनी इज्ज़त और आबरू खो चुके हो, अपनी स्वतंत्रता और राजपाट खो चुके हो, अर्थात् अपना सब कुछ खो चुके हो, तो प्यारो ! अब आप और क्या खोना चाहते हो, जो फिर भी इसके छिपाने की कोशिश करते हो ? क्या आप यह चाहते हो कि आपका नाम-निशान तक इस दुनिया में न रहे ? नाम के लिए आपका नाम किसी क़द्र अभी तक है, सो उसका भी मटिया-मेट होना चाहता है, क्योंकि आपने इस धर्म (खज़ाने) को इस क़दर छिपा रक्खा है कि आप भी उसको नहीं देखना चाहते कि उसमें कैसे कैसे अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, जिससे आपको अपनी असलियत मालूम होती और आपको अभिमान होता कि हमारा खज़ाना दुनिया के और खज़ानों से बढ़िया है। पर ऐसा न करके आप दूसरों के काँच पर लुभाये चले जाते हो। और अगर आपकी यही हरकत रही, तो आप सब के सब काँच पर लुभाये चले जाओगे, और आपका नामोनिशान दुनिया में नहीं रहेगा। यह भी याद रक्खो कि यह अमूल्य खज़ाना अब छिपाने से भी छिपता नहीं है। लोगों को उसका पता लग चुका है और अमूल्य जवाहिरात को वे लोग निकालने लग गये हैं। आपके खज़ाने के अमूल्य रत्नों में से सत्य, शौच, संयम, विद्या, बुद्धि, धृति, क्षमा नाम के रत्न और सभी रत्नों से बढ़ा हुआ समदर्शिता रूप महारत्न, जिसका दूसरा नाम ब्रह्मविद्या या वेदान्त है और जिसका यहाँ नाम नहीं दिखाई देता है, वे सब के सब रत्न अमेरिका, जापान आदि दूसरे मुल्कों में चले गये हैं, ऐसा ही मालूम होता है। देखो अमेरिका, जापान आदि मुल्कों में जो अद्भुत प्रकाश का सौन्दर्य

दिखलाई देता है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह उन्हीं महात्माओं की विमल ज्योति वा छटा का प्राकृतिक गुण है, उन्हीं का प्रभाव है और उन्हीं का महत्त्व है। जापान, अमेरिका को देखकर कृष्ण के ज़माने का स्मरण होता है। उस ज़माने में हिन्दुस्तान में जिस दर्जे का धर्म था, उन मुल्कों में इस समय उस दर्जे का धर्म पाया जाता है, तब हिन्दुस्तान की उस ज़माने में जो हालत थी, वह हालत जापान, अमेरिका की इस वक़्त हो, तो आश्चर्य ही क्या है।

एक बार अमेरिका में राम को एक धनवान स्त्री के यहाँ से न्योता आया, जो विपुल धन की अधिकारिणी थी, जिसने ४५ लाख रुपया अपने मुल्क की उन्नति के लिये ही दान दिये थे। जब राम वहाँ गया, तो वह धनी स्त्री जूता झाड़ने के लिये तैयार थी। राम ने आश्चर्य से पूछा कि आप इतने नौकरों के मौजूद होने पर भी ऐसा काम स्वयं क्यों करना चाहती हो? उसने उत्तर दिया कि इस काम के करने में लज्जा ही क्या है, यह शारीरिक काम करने में हम अपनी इज्ज़त समझते हैं, और उसने अपने ही हाथों से यह काम किया। क्या कोई हिन्दुस्तानी रईस या मामूली आदमी भी ऐसा काम कर सकता था? कभी नहीं। हिन्दुस्तानी आदमी, अगर यह सम्भव हो तो, अपनी आँखों से भी देखा नहीं चाहता है। पर कृष्ण के जमाने में ऐसा अतिथि सत्कार बड़े आदमी स्वयं करते थे। कृष्ण तथा कृष्ण की पटरानियों ने स्वयं ऐसा अतिथि-सत्कार सुदामा आदि ब्राह्मणों और अतिथियों का किया। युधिष्ठिर के यज्ञ में अर्जुन और कृष्ण ने जूठी पत्तल उठाने और पैर धोने का काम अपने जिम्मे लिया था, पर अब अमेरिका में ये बातें पाई जाती हैं, हिन्दुस्तान में नहीं।

कृष्ण के ही जमाने में हिन्दुस्तान में ब्रह्मचर्य्य की जो अवस्था थी, वह अमेरिका में अब पाई जाती है। वहाँ २० वर्ष तक न कोई विवाह करता है और न किसी को विवाह का ख़्याल ही होता है, यहाँ तक कि २० वर्ष तक के लड़के और लड़कियाँ एक ही पाठशाला में पढ़ते हैं, और भाई-बहिन की सी प्रीति रखते हैं। उनके विषय में चाहे कोई कुछ कहे, पर इस बात का हमको दृढ़ विश्वास है कि उनके दिलों में कभी नापाक (अपवित्र) ख़्याल पैदा नहीं होता। यह कैसे ग़ज़ब का ब्रह्मचर्य्य है? वे स्त्री और पुरुष को बराबर की शिक्षा देते हैं, उनकी पढ़ाई में वे कुछ भेद नहीं रखते हैं। मर्दों के बल को बढ़ाने की जैसी आवश्यकता है, स्त्रियों के बल को बढ़ाने की भी वैसी ही आवश्यकता समझते हैं, और है भी। वे लोग स्त्रियों के बल को कम नहीं करते, हम लोग उन्हें बल-हीन कर देते हैं। यही कारण है कि हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ बल-हीन होती हैं, निर्बल संतान जनती हैं, और घर के कामों को भी यथारीति सम्पादन नहीं कर सकती हैं। अमेरिका की स्त्रियाँ वीर होती हैं, वीर संतान जनती हैं, और घर के कामों में बड़ी प्रवीण होती हैं। वहाँ की स्त्रियों की वीर कहानी देख कर आश्चर्य्य होता है। जवान स्त्रियों की बात जुदी है, वहाँ लड़कियाँ भी सितम कर जाती हैं। एक बार एक लड़की ने, जिसकी आयु अठारह वर्ष की थी, एक झील को, जिसका वर्ग (दायरा) तीन मील था, तैरने की इच्छा ज़ाहिर की। इसके लिये दिन नियत कर दिया गया, नोटिस बाँटे गए। लड़की की कठिन प्रतिज्ञा सुन कर लोगों को आश्चर्य होता था। मुकर्रर दिन पर बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी हुई। लड़की तैरने की तैयारी करने लगी। दो

किश्तियों को उसके दोनों तरफ़ तैयार रहने की इजाज़त हुई, ताकि लड़की थक जाय, तो किश्ती में बैठा ली जाय और डूबने न पाए। लड़की ने तैरना शुरू किया, किश्ती भी साथ-साथ चलती गई, पर तअ़ज्जुब है कि लड़की उस बड़ी झील को साफ़ तैर गई और थकी नहीं! यहाँ मर्दों से भी यह काम होना संभव नहीं है, ऐसा कठिन काम सिवाय ब्रह्मचर्य्य के हो नहीं सकता। कृष्ण के ज़माने में स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य से रहती थीं, और बड़े-बड़े कठिन काम संपादन करती थीं। सत्यभामा कृष्ण के साथ स्वयं लड़ाई में गई थीं। उस ज़माने में स्त्रियों को खूब शिक्षा दी जाती थी। रुक्मिणी, सत्यभामा आदि खूब लिखी-पढ़ी थीं। द्रौपदी ऐसी पंडिता थी कि उसने सभा में जो प्रश्न किए थे, उनका उत्तर देना भीष्मपितामह के लिए भी कठिन हो गया था। अब हिन्दुस्तान में स्त्री-शिक्षा बंद कर दी गई, जिसका फल भी खूब मिल रहा है। अमेरिका आदि मुल्कों में स्त्री-शिक्षा का खूब प्रचार है। एक समय राम अमेरिका के जंगलों में रहता था, एक अमेरिकन लड़की अपने पिता के साथ उपदेश सुनने आई। उपदेश पूरा होने के पश्चात् उस लड़की ने जो कुछ सुना था, वह कविता में लिख डाला। इन सब बातों पर विचार करने से मालूम होता है कि स्त्री और पुरुषों की शिक्षा में पहिले भेद न था, और इसीलिए उनकी दिमाग़ी ताक़त में फ़र्क़ भी न होता था। तब हम कोई कारण नहीं समझते कि स्त्रियों की शिक्षा क्यों बन्द हुई, और उनकी ताक़त क्यों रोक दी गई है। मुल्क की उन्नति के लिए स्त्री-शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है, अर्थात् बिना स्त्री-शिक्षा के मुल्कों की उन्नति हो ही नहीं सकती। लड़कपन में बालकों को जो उपदेश

दिया जाता है, उसका असर बहुत जल्द होता है, और कभी खाली नहीं जाता है, और बालकों को माता ही के साथ रहने का अवसर मिलता है। सो लड़कपन में बालकों को शिक्षित माता की आवश्यकता होती है। पर यदि स्त्री पढ़ाई ही नहीं जायगी, तो शिक्षित मातायें कहाँ से होंगी; और जब शिक्षित मातायें हीं नहीं, तो बालकों को सदुपदेश ही कहाँ से दे सकती हैं। और जब बालक बाल्यावस्था ही में सदुपदेश द्वारा सुयोग्य न बना दिए गए, तो मुल्क की कैसे उन्नति हो सकती है। अतः प्यारो! स्त्री-शिक्षा को फैलाओ, आपके पूर्वपुरुष स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती थे, आप क्यों विपक्षी बन कर अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारते हो? लड़कों को बाल्यावस्था में यह ज़रूरी है कि उनके नस-नाड़ो में देशोन्नति का खयाल धँसा दिया जाय, ताकि बड़े होने पर वह खयाल दृढ़ हो जाय, और देशोन्नति करना ही उनका मुख्य कर्त्तव्य हो जाय। तब आपके देश में कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी। आप बराबर उन्नति करते जाओगे।

उन्नति के मार्ग में सफलता प्राप्त करने के लिये स्त्री-शिक्षा जैसी परम आवश्यक है. वैसे ही सत्य व्यापार है। बिना व्यापार की तरक़्क़ी के देश की तरक़्क़ी नहीं हो सकती। चाहे जिस उन्नत मुल्क की ओर दृष्टि डालो, व्यापार ही उसका मूल-कारण दिखलाई देगा। हिन्दुस्तान में व्यापार बड़ी बुरी दशा में है। हिन्दुस्तानी व्यापार करना ही नहीं जानते। उद्योग और पुरुषार्थ को काम में न लाकर क्षुद्र ब्याज के लोभ से हिन्दुस्तानी अपनी पूँजी लगा देते हैं, और आप सुस्त, आलस्य-ग्रस्त होकर चारपाई पर पड़े-पड़े मक्खी हाँका करते हैं। दूसरे देशवाले अपने उद्योग, पुरुषार्थ और सत्य व्यापार

से ग़रीब से धनी और धनी से कुबेर हो रहे हैं। और हिन्दुस्तानी इसके ठीक विपरीत। दूसरे मुल्कवालों के व्यापार के फैलाव को देखकर मन को आश्चर्य होता है। शिकागो में मार्शल फ़ील्ड की एक दुकान है। यह २० मंज़िल ऊँची और एक मील लंबी-चौड़ी है। यहाँ नित्य करोड़ों रुपयों का सौदा होता है? इतनी भारी और आला दर्जे की दुकान होने से इतना तअज्जुब नहीं होता, जितना कि ग्राहकों के साथ इनका सद्व्यवहार देखकर होता है। लाखों रुपयों का माल ख़रीदनेवाले से और एक पैसे की दियासलाई खरीदनेवाले से एकसाँ बरताव करते हैं। चाहे कोई कितने ही का खरीदार हो, जब वह दुकान के फाटक पर जायगा, तो शीघ्र ही एक दरबान कुछ आगे बढ़ कर उसकी अगवानी करेगा, और बड़ी नम्रता से उससे विनय करेगा कि क्या हुक्म है? जब वह कहेगा कि मुझे फ़लाँ चीज़ दरकार है, या मैं अमुक वस्तु केवल देखना चाहता हूँ, तो वह दरबान उसको उस कमरे में, जहाँ उसके लायक़ सौदा है, या जहाँ-जहाँ वह देखना चाहता है, ले जायगा; पश्चात् फाटक से कुछ दूर तक उसको पहुँचा कर अदब से सलाम करके वापस होगा। यह बराबरी का सलूक, यह सच्चाई, यह प्रेम ही व्यापार की उन्नति के मुख्य अंश हैं। वे इनका पूर्ण व्यवहार करते हैं, और इसीलिये ही वे व्यापार में इतना बढ़े-चढ़े हैं कि उनकी बराबरी करनी मुश्किल जान पड़ती है। यहाँ हिन्दुस्तानियों की अजब कैफ़ियत है। यहाँ ग्राहकों के साथ एकसाँ बरताव नहीं होता। बड़ी दुकानों से थोड़ा सौदा खरीदने का किसी को हौसला नहीं होता। इसका कारण यह है कि बड़ी दुकानवाले थोड़ा

सौदा खरीदनेवाले के साथ अच्छा बरताव नहीं करते। छोटी-छोटी दुकानवाले अक्सर झूठ बोला करते हैं। इन लोगों का यह खयाल है कि बिना झूठ के व्यापार चल ही नहीं सकता। एक पैसे का सौदा खरीदने में घंटों मग़ज मारना पड़ता है। मुफ्त में तक़रार बढ़ती और समय नष्ट होता है। यदि सचाई के साथ व्यवहार किया जाय, तो क्यों न व्यापार में तरक़्क़ी हो?

हिन्दुस्तान में व्यापार की तरक़्क़ी क्यों नहीं होती? इसका एक कारण यह है कि हिन्दुस्तानी लोग, जो लिख-पढ़ सकते हैं, केवल नौकरी किया करते हैं, व्यापार करना वे अपनी बेइज़्ज़ती समझते हैं, या उधर ध्यान ही नहीं देते। चाहे दुकानदारों की ही वे नौकरी करें, पर दुकानदारी कभी नहीं करेंगे। यह क्या ही मजे की बात है कि जिस पेशे को स्वयं नहीं करना चाहते, उस पेशेवाले की नौकरी तो वे कर लेंगे, पर इज्जत का पेशा न करेंगे। हिन्दुस्तानियों को व्यापार की ओर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है। व्यापार-नीति का रहस्य जानने के लिये सिर-तोड़ परिश्रम तथा अनुभव करने की निहायत ज़रूरत है कि किस प्रकार कौन-से व्यापार से किस देश में कितना लाभ होगा, हमको ग्राहकों के साथ किस प्रकार बरताव करना चाहिए, इन बातों की ओर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए, इस बात पर दृढ़ विश्वास करना चाहिए कि सचाई के साथ व्यापार करने से जो लाभ होता है, वह कदापि झूठ व्यवहार से नहीं होता। झूठे व्यवहार से एक बार रक़म आनी संभव है, पर पश्चात् वह चलता नहीं। काठ की हाँडी दूसरी बार आग पर नहीं रक्खी जाती, एक बार चाहे उसमें बना

भी लो। बरसाती नदी जैसे किनारों को तोड़-फोड़ कीचड़ तथा लकड़ी बहा कर, सनसनाती हुई धूम-धाम के साथ थोड़े दिनों तक अपना प्रवाह रखती है, और फिर उसमें पानी पीने को भी नहीं रहता, इसी प्रकार झूठा व्यवहार थोड़े दिनों तक दुनिया को ठग कर लोगों की नज़र में अपना वैभव दिखाता है, पश्चात् वह स्वयं नष्ट हो जाता है, और साथ ही इज़्ज़त और आबरू को भी अपने में लय कर देता है। पर सत्य व्यापार करने से धन की प्राप्ति होती है, प्रतिष्ठा बढ़ती है, धर्म होता है और मुक्ति मिलती है। यह लोक और परलोक दोनों बनते हैं। महात्मा तुलाधार वैश्य का इतिहास किसको मालूम नहीं ? सत्य व्यापार करते-करते यह इस दर्जे के धर्मात्मा और ज्ञानी हो गए थे कि बड़े-बड़े तपस्वियों को कितने ही वर्ष तपस्या करने पर भी वह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था। एक तपस्वी एक दफ़े महात्मा तुलाधार की धर्म व ज्ञान-कीर्ति सुनकर उनके सत्संग की इच्छा से उनके पास आया। ज्यों ही उस महात्मा का तुलाधार से मिलना हुआ कि तुलाधार ने उनके आने का कारण ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। तपस्वी को बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि मुझे जो ज्ञान कितने ही वर्ष तपस्या करने पर भी प्राप्त नहीं हुआ, इस नीच-वृत्ति से इसे कैसे प्राप्त हुआ। दर्याफ़्त करने पर महात्मा तुलाधार ने कहा—"आपको आश्चर्य्य होगा कि इस पेशे के करनेवाले को ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? पर इसमें आश्चर्य्य की कोई बात नहीं। मैं हमेशा सत्य का व्यवहार करता हूँ। अपने ग्राहकों को ठगने की कभी इच्छा नहीं रहती। मामूली नफ़ा लेकर अपने ग्राहकों को सौदा देता हूँ। मैं कभी कम या ज़्यादा किसी को नहीं देता, और न किसी

से लेता हूँ। सबके साथ एकसाँ बरताव करता हूँ, सबके साथ सच्चा व्यवहार करता हूँ। सत्य ही सब धर्मों में श्रेष्ठ है, और उसी का मैं सेवन करता हूँ। छल-कपट कभी नहीं करता। यही कारण है कि मुझको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है; जिससे आप-जैसे महात्माओं का मुझे घर बैठे दर्शन मिलता रहता है।" अहा! सत्य का कैसा माहात्म्य है! यदि हिन्दुस्तानी वैश्य लोग तुलाधार के इस पवित्र उपाख्यान की ओर दृष्टि दें, यदि वे तुलाधार की तरह सत्य व्यवहार करें, सत्य बोलें, सत्य तोलें, तो उनको तपस्या के लिये जंगल में जाने का क्या प्रयोजन है? सत्संग के लिए महात्माओं के ढूँढने का क्या मतलब है? दुकान पर बैठे हुए धन, धर्म, काम, मोक्ष, सत्संग आदि सब अपने आप चले आते हैं, क्योंकि प्रायः यह देखा गया है कि जो भले आदमी होते हैं, वे बहुधा उसी दुकान से लेन-देन रखते हैं, जहाँ सत्य व्यवहार होता है। भले आदमियों के ही समागम को सत्संग कहते हैं, सत्संग ही से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है, तो प्यारो! आप सत्य व्यवहार, प्रेम का बरताव क्यों नहीं करते। यह देखिये, आजकल ग़ैर मुल्कवाले (विदेशी) तुलाधार की तरह सत्य व्यवहार से कैसे मालामाल हो रहे हैं। यह देखिये, उनका कैसा ऐश्वर्य्य बढ़ रहा है। यह देखिये, इसी व्यापार की बदौलत सारी दुनिया उनके हस्तगत हो रही है। आप लोग भी सत्य व्यापार करो। व्यापार की वृद्धि करो। क्षुद्र ब्याज़ के लोभ से पूँजी लगा कर आलसी मत बनो। देखो, ग़ैर मुल्कवाले (विदेशी) व्यापार में इतने रुपये लगा रहे हैं कि बुद्धि काम नहीं करती। उतना रुपया आपके पास है ही नहीं। मतलब यह है कि जितना भी रुपया

आपके पास है, वह सब व्यापार के लिये बहुत कम है। ब्याज में न लगाकर उन रुपयों को व्यापार में लगाने से आपको आशातीत लाभ होगा, आपके मुल्क को फ़ायदा पहुँचेगा।

यह पहले कहा जा चुका है कि हिन्दुस्तानी लिखे-पढ़े आदमी व्यापार करना नहीं चाहते, यह बड़े अफ़सोस की बात है, पर इससे भी ज्यादा शोक इस बात पर है कि हिन्दुस्तानी व्यापारी लोग विद्या की ओर ध्यान नहीं देते। विद्या को वे कोई चीज नहीं समझते। उनका ख़्याल है कि हमको किसी की नौकरी थोड़ी ही करनी है, जो पढ़ने में इतना सिर मारें। यह उन लोगों का बड़ा ही बेहूदा (पोच) ख़्याल है। अनपढ़ आदमी जितना रुपया लगाकर जितना नफ़ा उठा सकेगा, लिखा-पढ़ा आदमी उतने ही रुपयों से बीसगुना नफ़ा कर सकता है। व्यापार के लिये धन की जैसी जरूरत है, विद्या की भी वैसी ही जरूरत है। यह कैसी कठिन समस्या है कि लिखे-पढ़े आदमी तो व्यापार नहीं करते, और व्यापारी लिखना-पढ़ना नहीं चाहते। व्यापार के लिये नित्य नई-नई तदबीरें सोचनी पड़ती हैं, और नई-नई तदबीरों को सोचने के लिये विद्या चाहिये। पर व्यापारी लोग विद्या ही नहीं पढ़े हैं, तो वे कैसे नई-नई तदबीरें सोच सकते हैं। यही कारण है कि हिन्दुस्तान का व्यापार तरक़्क़ी पर नहीं है। ग़ैर मुल्कवाले नित्य नई-नई तदबीरें सोचकर नया-नया कौशल रचकर व्यापार में आशातीत उन्नति कर रहे हैं।

जब ग़ैर मुल्कवालों की इस उन्नति का सवाल हिन्दुस्तानियों के सामने रक्खा जाता है, तब हिन्दुस्तानी प्रायः यह दलील पेश करते हैं कि उनका मुल्क ठंडा है, और

हमारा गरम। गरम मुल्क होने की वजह से हम उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते। यह ख़्याल बिलकुल ग़लत है। ठंडा और गरम उन्नति के साधक और बाधक नहीं हैं। यह विलायतवालों की एक पालिसी है कि उन्होंने हिन्दुस्तानियों के दिलों में यह ख़्याल जमा दिया है, ताकि हिन्दुस्तानी उनका मुक़ाबला करने की कोशिश न करें। आजकल हिन्दुस्तानी ऐसे सीधे मिजाज के हो गये हैं कि विलायतवालों की चटक-मटक पर बिलकुल मोहित हो गये हैं। उनके दिलों में यह ख़्याल हो गया है कि विलायतवाले जैसा कहें व करें, वह ठीक है। राम इस बात को जोर देकर कहता है कि गरमी के सबब हिन्दुस्तान की उन्नति नहीं रुकी हुई है। हिन्दुस्तान की उन्नति अगर रुकी है, तो इसलिये कि हिन्दुस्तानी लोग अपने सच्चे धर्म (वेदान्त अथवा ब्रह्मविद्या) को अमल में लाना भूल गये हैं। तोता जैसे राम राम या और कोई वाक्य सिखाने से सीख जाता है, पर उसको समझ नहीं सकता, या अमल में नहीं लाता, वैसे ही हिन्दुस्तानी लोग ब्रह्मविद्या अर्थात् वेदान्त शब्दों को तो जानते हैं, पर उसको अमल में नहीं लाते हैं। बस, यही अवनति की निशानी है और इसी से अवनति होती है। अमेरिका, जापान आदि मुल्कों में यद्यपि लोग 'ब्रह्मविद्या' शब्द को नहीं जानते हैं, अर्थात् 'ब्रह्मविद्या' उनकी बुद्धि में नहीं है, परन्तु उनकी नस-नस में और उनके अमल में ब्रह्मविद्या है। यह क़ुदरत का क़ानून है कि कोई भी चीज़ उसके गुण जानने पर भी जब तक अमल में नहीं लाई जाती, अपना गुण नहीं दिखाती है। मिश्री का गुण चाहे कोई भले ही समझता हो, पर जब तक खायगा नहीं, वह कभी अपना गुण नहीं दिखायगी, या अमृत

के गुण चाहे कोई भले ही जानता हो कि इसके खाने से आदमी अमर हो जाता है, पर जब तक वह खायगा नहीं, अमर नहीं हो सकता, चाहे वह अमृत उसके हाथ में ही हो। इसी तरह हिन्दुस्तानी ब्रह्मविद्या के गुणों को समझते हैं, उसकी तारीफ़ करते हैं, पर उसको अमल में लाते नहीं हैं, तब कैसे ब्रह्मविद्या उनको अपना गुण दिखावेगी? अमेरिका और जापानवालों ने ब्रह्मविद्या का नाम नहीं सुना, तारीफ़ नहीं सुनी, पर वे उसको बेजाने ही अमल में लाते हैं, तब उन पर वह अपना गुण क्यों न दिखावे? और क्यों न उनकी उन्नति हो? अतः प्यारो! सर्दी और गरमी उन्नति की साधक और बाधक नहीं हैं। अगर सर्दी उन्नति का कारण होती, तो तिब्बत आदि देशों की दशा भी अच्छी रहती। वह ब्रह्म-विद्या है, जिसका अमल में लाना और न लाना उन्नति का साधक तथा बाधक है। अमेरिका आदि मुल्कों के समान जब आप भी शारीरिक परिश्रम करने में अपनी प्रतिष्ठा समझने लगोगे, बीस-पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करोगे, स्त्रियों को बराबर शिक्षित करोगे, सबके साथ बराबर का बरताव करोगे, सचाई से काम लोगे, एक दूसरे से प्रेम करना सीखोगे, तभी आपकी उन्नति निश्चित है, और इसी को असली वेदान्त कहते हैं। भला, विचार करने की बात है कि जब हिन्दुस्तानी चक्रवर्ती राज्य करते थे, क्या तब हिन्दुस्तान गरम नहीं था? जब हिन्दुस्तानियों ने बड़े-बड़े दर्शन-शास्त्र रचे थे, क्या तब हिन्दुस्तान गरम नहीं था? जब हिन्दुस्तानियों ने विमान आदि भाँति-भाँति की कला निर्माण की थी, क्या तब हिन्दुस्तान गरम नहीं था? जब हिन्दुस्तानियों ने अपनी विद्या, बुद्धि, वीरता से जग को जीत लिया था, क्या तब हिन्दुस्तान

गरम नहीं था? यदि कहो कि जी! अब तो कलयुग आ गया है, वे तो सतयुग की बातें हैं, तो क्या अमेरिका-जापान के लिये कलियुग नहीं आया? यह दलील बड़ी पोच है। कलियुग कोई चीज़ नहीं है। कलियुग सिर्फ़ समय के एक हिस्से का नाम है। यह किसी का हाथ भले कर्म करने से नहीं खींचता है। हाँ, बेशक ब्रह्मविद्या के अमल में न लाने को कलियुग कहा जाय, तो ठीक है; और तब हक़ीक़त में मनुष्य से कुछ भी अच्छा काम नहीं हो सकता, क्योंकि कोई भी अच्छा काम ब्रह्मविद्या से भिन्न नहीं है। पर ऐसा कोई ज़माना ही नहीं, समय ही नहीं, घंटा-पल नहीं कि जब ब्रह्मविद्या से परहेज़ किया जाय, तो कलियुग कहाँ रहा? प्यारो! विचार तो करो, कहाँ आपके पूर्वपुरुष अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य रखते थे, और कहाँ आप दो-चार वर्ष के लड़के की शादी कर रहे हो। आप विद्या को उपयोग में नहीं लाते, अर्थात् जो कुछ पढ़ते हो, वह अमल में नहीं लाते। रट-रटकर बी० ए०, एम्० ए० पास करते हो, पर उसका व्यवहार नहीं करते। खाली नौकरी कर लेने में अपने इल्म को सार्थक समझ लेते हो। तोता जैसे पढ़ाने से राम-राम पढ़ लेता है, लेकिन समझता कुछ नहीं, यही हाल आजकल हिन्दुस्तानियों का है। हिन्दुस्तानियों की बुद्धि ब्रह्मचर्य्य न रखने से, बल-वीर्य्य और विद्या का उचित प्रयोग न करने से, कमज़ोर होती चली जा रही है। विलायतवाले कम-से-कम बीस वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य्य रखते हैं, इसलिए वे मज़बूत होते हैं, और जो कुछ पढ़ते हैं, उसको अमल में लाते हैं, और जहाँ तक हो सकता है, एक-न-एक बात नई पैदा करने की फ़िक्र (चिन्ता व विचार) में रहते हैं, इसलिए उनकी बुद्धि रोज़-ब-रोज़

बढ़ती चली जाती है। ठंड (सर्दी) होने की वजह से उनको ऐसी उन्नति नही हुई। जिस ज़माने मे हिन्दुस्तानी उन्नति के ऊँचे शिखर पर चढ़े हुए थे, और विलायतवाले जगल में रहा करते थे, उस ज़माने मे भी तो वहाँ ठड ही थी।

अतएव ठंड और गरम की दलील बिलकुल बेहूदा (पोच) है, ये कदापि उन्नति और अवनति के साधक व बाधक नही है। जापान पचास वर्ष पहले यदि गरम था, तो वह अब ठंडा नही हो गया। उसने ऐसी क्यो उन्नति की है? प्यारो! गुणों को ग्रहण करने और अवगुणों के त्यागने से और अपनी विद्या-बुद्धि का उचित प्रयोग करने ही से जापान ने ऐसी तरक्क़ी की है। आप भी ऐसा कर सकते हो। जो पढ़ते हो, उसका अमल मे लाना सीखो, यही उन्नति का उपाय है। हिन्दुस्तानी बी० ए०, एम्० ए० पास करके जो बात नही सीख सकते, विलायतवाले उस बात को बचपन में सीख जाते है। वहाँ बच्चों के लिये किंडर-गार्टन नाम का स्कूल है। इस स्कूल में बच्चे, ऐसे प्रेम से सिखाये जाते है कि लडके घर मे रहना पसंद नहीं करते। वे घर मे अपने मा-बापों का स्कूल में जल्दी भेजने के लिये नाक मे दम कर देते है। वे हमेशा यह चाहते है कि हम स्कूल मे जायँ। इसका कारण यही है कि उस्ताद लोग बच्चों के साथ ऐसी गहरी प्रीति करते है कि उनके मा-बाप भी वैसी नहीं करते। बच्चो के साथ वे बिलकुल बच्चे हो जाते है। उनके साथ खेलते है, कूदते है, हँसते है, और साथ ही साथ उनको पढ़ाते जाते हैं। यहाँ रेल, जहाज़, तार और विविध भाँति की कल बनाने का सब सामान मौजूद रहता है। जब रेल का सबक पढ़ाया

जाता है, तो उस्ताद लोग बच्चों को उस जगह ले जाते हैं, जहाँ रेल बनाने के कल-पुर्जे रक्खे हुए रहते हैं। उस्ताद लोग इंजन बनाना सिखाते हैं, और लड़के बात की बात में हँसते-खेलते इंजन बनाना सीख जाते हैं। जितनी देर में हिन्दुस्तानी बच्चे आर ए आइ एल् रेल, माने धुआँगाड़ी, याद करते हैं, उतनी देर में वे रेल बनाना भी सीख जाते हैं। यहाँ सिर्फ़ नाम-मात्र जानते हैं, वहाँ नाम के साथ रेल बनाना भी सीख जाते हैं। हिन्दुस्तानी शब्द-समूह को दिमाग़ में भरते हैं, विलायतवाले दिमाग़ से निकालते हैं, अर्थात् उनको अच्छी तरह समझते हैं। यहाँ रटन करते हैं, वहाँ मनन करते हैं। वहाँ अक़्ल से किसी बात को सोचते हैं, दिल में उसको करने की इच्छा करते हैं, और हाथों से उसको करके दिखलाते हैं; यहाँ कुछ भी नहीं। ख़ाली किताबें रट-रटकर पंडित कहलाते हैं। यहाँ की विद्या पुस्तकों में है, वहाँ की विद्या हरएक के हस्तगत है। वहाँ कभी किसी विद्यार्थी को तब तक प्रमोशन (Promotion, तरक़्क़ी) नहीं मिलती, जब तक कि उसको उस दर्जे के लायक़, जिसमें कि वह पढ़ता है, विचार करने तथा मनन करने की शक्ति नहीं होती। यहाँ इस बात पर विचार ही नहीं किया जाता। किताबें मुखाग्र करके अबोध बालक बड़ा दर्जा पास कर सकता है, कोई उसकी लियाक़त की ओर ध्यान नहीं देता। वहाँ सिर्फ़ लियाक़त देखते हैं। एक बार एक लड़की ने मेरा लेक्चर सुना। उसने उसको अपने तौर पर लिखा और अपने प्रिंसिपल को दिखाया। प्रिंसिपल बड़ा खुश हुआ, और उसने उस लड़की को छः मास का प्रमोशन दिया। इसी प्रकार जब तक कि हिन्दुस्तान में भी लड़कों की लियाक़त तथा विचार-शक्ति पर ध्यान नहीं

दिया जायगा, तब तक हिन्दुस्तानियों का आला दर्जा पास कर लेना भी किसी काम का नहीं। यहाँ भी किंडर-गार्टन होने चाहियें, जिसमें बच्चे प्रैक्टिकल (व्यावहारिक) इल्म हासिल करें, उनकी विचार-शक्ति बढ़े, अर्थात् युवा होने पर वे किसी काम के हों, और अपने मुल्क को फायदा पहुँचा सकें। समय चला जा रहा है। एक-एक लम्हा (पल) बहुमूल्य गुजर रहा है। बहुत कुछ सो चुके, बहुत कुछ आराम कर चुके, बहुत कुछ समय नष्ट कर चुके, बहुत कुछ खो चुके। प्यारो! अब अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान दो। वह उपाय करो, जिससे आपका मनुष्य-जन्म सार्थक हो। असभ्यता का जामा उतार दो। थोड़ी देर के लिये इस बात पर विचार करो कि आप क्या थे और अब क्या हो गये। अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान न देने से अब आप धीरे-धीरे रोटियों के भी मुहताज होते चले जा रहे हो। यदि इसी प्रकार कुछ दिनों तक ऐसी ग़फलत की नींद मे सोते हुए रहोगे, तो प्यारो! आपकी जैसी दशा होगी, वह आप स्वयं विचार लो। कहने से दुःख होता है। सावधान! सावधान!! बहुत जल्द सावधान होना चाहिये।

अपनी उन्नति करने के लिये हिन्दुस्तानियों को ग़ैर मुल्क-वालों (विदेशियों) से बहुत कुछ सीखना है। सबसे पहली बात, जो उनसे सीखनी है, यह है कि वे लोग बच्चों को किस प्रकार शिक्षा देते हैं। क्योंकि बच्चों की शिक्षा पर ही देश की उन्नति, अवनति का दारोमदार है। बच्चों को जिस प्रकार की शिक्षा दी जायगी, उसी प्रकार का उनका आचरण, स्वभाव और ख़याल होगा। जापान में जब लड़का पहले-पहल स्कूल मे भरती होता है, तो मास्टर उससे सवाल करता है "तुम्हारा शरीर काहे से जीवित है?" लड़का कहता

है "अन्न से।" मास्टर पूछता है "कहाँ के अन्न से?" लड़का जवाब देता है "जापान के अन्न से।" मास्टर फिर कहता है, "तब यदि जापान में अन्न न होगा, तो तुम्हारा शरीर जीवित (जिन्दा) नहीं रह सकता?" लड़का जवाब देता है "नहीं, नहीं रह सकता।" तब मास्टर कहता है, "जब तुम्हारा शरीर जापानी अन्न से बना है, तो क्या जापान को इख्तियार है कि जब उसको जरूरत हो, तब वह तुम्हारा शरीर ले ले?" लड़का बहादुरी से जवाब देता है "हाँ, जापान को इख्तियार है, जब चाहे हमारे शरीर को ले सकता है।" इस प्रकार अपने देश के लिये हर वक्त प्राण देने को तय्यार रहने की जापानी बालकों को पहिले ही शिक्षा दी जाती है। यह उसी शिक्षा का फल है कि जापान ने रूस जैसे प्रबल राज्य को ऐसी भारी हार दी है। हिन्दुस्तानियों को भी अपने बालकों को पहिले ही से ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जिससे उनका देशानुराग, उनकी देश-भक्ति, ऐसी प्रबल हो जाय कि समय पड़ने पर वे अपने देश के लिये प्राण देने को तय्यार रहें। शिक्षा का यही पहिला सबक पहले-पहले बालकों को देना चाहिये।

पहले अपने देशवालों के साथ प्रेम तथा शान्ति-पूर्वक बरताव करना, यह उनकी दूसरी शिक्षा होनी चाहिये। स्कूलों ही में ऐसी शिक्षा देने का प्रबन्ध करना चाहिये। यदि स्कूलों में लड़के आपस में नहीं लड़ना सीखेंगे और प्रेम से रहेंगे, तो जवान होने पर वे एकाएक अपने देशवालों से नहीं लड़ेंगे, और प्रेम-पूर्वक बरताव करेंगे। अमेरिका में इस प्रकार की शिक्षा का बड़ा अच्छा प्रबन्ध है। अमेरिका में एक बार एक स्कूल के लड़कों में आपस में लड़ाई हुई। बहुत कुछ मार-पीट हुई। उसी वक्त प्रिंसिपल को खबर दी गई। प्रिंसिपल आये। उन्होंने न किसी लड़के

का बयान लिया और न किसी को धमकाया। उन्होंने आते ही बाजे बजवाने शुरू किये, शांति के गीत गवाये। पश्चात् लड़कों को बुलाया, और झगड़े का कारण पूछा और यह भी दर्याफ़्त किया कि किसकी शरारत से यह झगड़ा पैदा हुआ। लेकिन आश्चर्य (तअज्जुब) है, जिन लड़कों में थोड़ी देर पहले लट्ठ चले थे, उनकी ज़बान से अब किसी की भी शिकायत नहीं निकली। इसका कारण क्या था? प्यारो! इसका कारण वह बाजा और शान्ति के गीत थे। उनको जो पहले क्रोध हुआ था, वह बाजा और गीत सुनकर शान्त हो गया। यदि प्रिंसिपल आते ही उनके बयान लेने शुरू करते, तो इस लड़ाई का नतीजा शांति में ख़तम न होता। एक लड़का दूसरे को क़सूरवार ठहराता, और अवश्य ही कुछ लड़के कसूरवार निकलते। और संभव था कि इसका नतीजा यह होता कि कुछ लड़के स्कूल से निकाल दिये जाते, और जो लड़के स्कूल से निकाल दिये जाते, वे उन लड़कों के हमेशा जानी दुश्मन (घोर शत्रु) हो जाते, उनके विरुद्ध गवाही देते। ख्याल करने से इसका नतीजा बहुत बुरा पैदा हो सकता है। यहाँ तक कि देश में अशांति फैल सकती है।

तीसरी बात लड़कों को डराना-धमकाना नहीं चाहिए, लड़कों को डराना और धमकाना बड़ी बुरी बात है। इससे लड़के डरपोक और कमज़ोर हो जाते हैं। हिन्दुस्तान में डराना धमकाना बुरे लड़कों को नेक बनाने की चेष्टा है, परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं है। लड़कों को नेक बनाने के लिये सबसे उम्दा मार्ग यह है कि उनकी नज़रों से कोई बुरी बात नहीं गुज़रने देनी चाहिये। और वीर तथा पुष्ट बनाने के लिये उनको पूरी स्वतन्त्रता देनी चाहिये। जापान में बालकों

को ऐसी स्वतन्त्रता है कि वैसी स्वतन्त्रता कहीं नहीं देखी गई। वहाँ बालकों को कहीं खेलने के लिये मुकर्रर जगह नहीं है। जहाँ उनकी खुशी होती है, वहाँ वे बेरोक-टोक खेलते हैं। चाहे वह आम जगह हो, या ख़ास; बाज़ार हो, या गली, जहाँ उनकी मरजी हो, वहाँ उनको कोई नहीं रोक सकता है। यहाँ तक कि यदि वे बाजार में खेलते हों और कारणवशात् वहाँ के बादशाह की गाड़ी उधर होके निकलनेवाली हो, तो मजाल नहीं है कि कोई उनसे कह दे कि "खेल बन्द करो, बादशाह आते हैं।" जब तक वे स्वयं अपना खेल बन्द नहीं करते, तब तक मिकाडो भी अपनी गाड़ी खड़ी रक्खेंगे। यही कारण है कि जापानियों के दिलों में भय का नाम-निशान भी नहीं है।

चौथी बात यह है कि बालकों को जो कुछ पढ़ाया जाय, वह अमल में भी लाना सिखलाया जाय। हिन्दुस्तान में इस बात की बड़ी कमी है। हिन्दुस्तानी स्कूलों में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह अमल में लाना नहीं सिखाया जाता है। इसलिये हिन्दुस्तानी बालक युवा होने पर बातूनी जमा-खर्च तो बहुत कर देते हैं, पर अमली कार्यवाही कुछ नहीं कर सकते।

पाँचवीं बात यह है कि जिस विषय की ओर बालक प्रवृत्त हो, वही विषय उसको विशेष रूप से पढ़ाया जाय, क्योंकि ऐसा करने से वह अधिक उन्नति कर सकेगा। हिन्दुस्तान में इस मुख्य प्रयोजनीय बात की ओर कोई ध्यान नहीं देता। यदि किसी बालक को वकालत प्रिय है, तो उसके मा-बाप उसको इंजीनियरिंग पढ़ने का अनुरोध करेंगे; यदि गणित-शास्त्र की ओर उसकी रुचि है, तो उसको इतिहास पढ़ने के लिये कहेंगे, और यदि उसकी चित्त-वृत्ति साइंस की ओर है, तो उसे साहित्य पढ़ावेंगे।

अब यह विचार करने की बात है कि जिस विषय की ओर बालक की रुचि ही नहीं, उस विषय में वह क्योंकर तरक़्क़ी कर सकता है। सुतरां बालकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिये। बालकों पर ही देश की भावी भलाई का भरोसा है।

एक बात जो केवल हिन्दुस्तानियों में दूसरे देशों से बढ़ कर अभी तक पाई जाती है, वह योग-विद्या है। पर अब अमेरिका आदि देश इससे ख़ूब उन्नति कर रहे हैं, और हिन्दुस्तानी भूल रहे हैं। अमेरिका में एफ़० ऐमरसन साहब ने, जो जंगलों में रहता था, योग-विद्या में इतनी उन्नति की है कि आश्चर्य्य होता है। वह मोहन को बदल कर गोपाल कर सकता है, स्थल को जल; ये सब करामातें वह योग-विद्या से करता है, जादू से नहीं। और अब आशा है कि वे लोग योग-विद्या में भी हिन्दुस्तानियों से बढ़ जायँगे। सो प्यारे हिन्दुस्तानियों! आपको सँभलना चाहिये। पहले पहल विद्यारूपी सूर्य का प्रकाश यहीं हुआ था। बाद को यहाँ से अरब, मिस्र, रूम, यूनान होता हुआ इँगलैंड पहुँचा था। वहाँ से अमेरिका होता हुआ जापान पहुँचा गया। अब जापान से उसकी किरणें इधर झुकती हुई दिखलाई देती हैं। अब आप सचेत हो जाओ। ऐसा न हो, यह सूर्य पश्चिम को ढलक जाय और आप सोये के सोये ही रह जायँ। उठो, और उठाने का प्रयत्न करो। सब अपने-अपने कर्त्तव्यों पर लगो, और अपने देश-वासियों को कर्त्तव्य बतलाओ। सूर्योदय के पूर्व ही अपने देशोन्नति रूपी कर्त्तव्यों को स्थिर कर लो। एक क्षण, एक पल भी व्यर्थ न खोओ। यदि सोच-विचार में ही पड़े रहोगे, तो सूर्य पश्चिम को चला जायगा, फिर आपसे कुछ करते-धरते नहीं बनेगा।

६

राम-उपदेश

(रायबहादुर लाला बैजनाथ द्वारा प्रकाशित उर्दू राम-उपदेश से उद्धृत)

यदि उन्नति चाहते हो, तो बाह्य वस्तुओं तथा काम-काज में भिन्नता और विचार तथा संकल्प में अभिन्नता करो। हिन्दुओं में वर्ण-व्यस्था वास्तव में इसलिए है कि काम तो भिन्न-भिन्न हों, परन्तु हृदय एक हों। किन्तु धीरे-धीरे यह असली कारण लौकिक व्यवहार में गुम व लुप्त हो गया, और आत्म-उन्नति के स्थान पर आत्म-अवनति आ गई। मेरे प्यारो! याद रक्खो कि शास्त्र व स्मृति आपके लिए हैं, आप शास्त्र व स्मृति के लिए नहीं। भारतवर्ष की नदियों का प्रवाह पलट गया। पहाड़ों से हिमरेखा (glaciers) हट गईं; वन कट गए, नगर बस गए, देश की दशा बदल गई, राजसत्ता पलट गई, लोगों के रंग और के और हो गए; परंतु आप इस क्षण-भंगुर संसार में, जो प्रतिक्षण बदलता रहता है, पुराने रस्म व रिवाजों को जिनमें कुछ जान बाक़ी है, क़ायम रखना चाहते हैं। हाय! वह मनुष्य जो आगे को तो चले और पीछे को देखे, कैसा बुद्धि-हीन होगा? मेरे प्यारे! आप ऋषियों की सन्तान हो, परन्तु उनके समय में नहीं रहते हो।

रेल, तार, बिजली, स्टीमर सब आपके पीछे पड़े हुए हैं। आपका मुक़ाबला तो बीसवीं शताब्दी के यूरोप तथा अमेरिका के विज्ञान-वेत्ताओं और शिल्पकारों की बुद्धि से है। याद

रक्खो कि या तो अपने को वर्तमान युग में रहने के योग्य बनाओ, अथवा पितृलोक में पधारो। आपको हमारा सलाम, प्रणाम है।

२—यदि मातृभूमि के हित (स्वदेश-प्रेम) का दावा है, तो सारे देश और उसके निवासियों के प्रति ऐसी एकदिली (हृदय की एकता) करो कि द्वैतभाव का बुलबुले के समान भी आपके और उनके बीच आवरण न रहे। यदि मैं अनुभव कर लूँ कि "मैं ही हिन्दुस्तान हूँ, भारतवर्ष की समस्त भूमि मेरा शरीर है, मेरा आत्मा समस्त भारत का आत्मा है, यदि मैं चलता हूँ, तो सारा भारतवर्ष चलता है, यदि मैं दम लेता हूँ, तो सारा भारतवर्ष दम लेता है, मैं ही शङ्कर हूँ, मैं ही शिव हूँ," तो यही असली वेदान्त है, यही सच्चा मातृभूमि का हित है।

३—संसार को सच्चा मानकर उसमें कूदते हो, याद रक्खो कि फूस की आग में पच-पच मरते हो, अपने शुद्ध सच्चिदानन्द-स्वरूप को भूल कर नाम व रूप की क़ैद में फँसते हो। सत्य को जवाब देकर (छोड़कर) असत्य (अज्ञान) में धक्के खाते हो। याद रक्खो, अगर चोट पर चोट न लगे, तो मेरा नाम राम नहीं। अजगर ने समझा कि मैं कृष्ण को खा गया, पर कृष्ण को पचा न सका। यही दशा आपकी है। इसी विधान को जीते जी क्यों नहीं समझते। मरने पर "राम राम सत्य है," ऐसा लोग कहते हैं। जब पहले ही समझ जाओगे कि "राम सत्य है," तो मरोगे ही नहीं। मरते समय गीता आपके क्या काम आएगी, अपने जीवन को ही भगवत् का गीत क्यों नहीं बनाते?

४—माता छोटे बच्चे को आम चूसने को देती है। बालक आम चूसने लगता है, चूसते चूसते फल फूट पड़ा

और बच्चे के हाथ पर, मुँह और कपड़ों पर रस ही रस फैल गया। अब तो न कपड़ों की सुध है, न मा की, न हाथ-मुँह का होश है। रस ही रस है। इसी प्रकार यदि श्रुति भगवती का दिया हुआ यह महावाक्य रूपी रस आपके अन्दर फूट पड़े, तो फिर रस ही रस (ब्रह्म) हो जाओगे। मन को देव के पास ऐसे बिठाओ कि रोम-रोम में राम रच जाए, मन अमृत में भीग जाए, चित्त आनन्द में डूब जाए, इसी का नाम उपासना है। जैसे पत्थर की शिला का गंगा में शीतल हो जाना, कपड़े की गुड़िया का अन्दर बाहर से जल में निचुड़ने लगना और मिश्री की डली का गंगा-रूप से एक हो जाना, यही तीन दर्जे उपासना के हैं।

५—धीरे-धीरे दैवी विधान चल रहा है, परन्तु मनुष्य उससे अनभिज्ञ है। इन्द्रियों की परिच्छिन्नता में बन्द होकर नाम-रूप की बालू की बुनियाद पर हवेली बनाकर मनुष्य उसमें रहता है, परन्तु अन्त में उसी के साथ बैठ जाता है। असली हवेली, जो पर्वत के शिखर पर सुदृढ़ बनी है, वह उस ज्ञानी की है, जो इस नाम-रूप को झूठा और ईश्वर के नियम को जीवित जानता है। यदि इस नियम पर कि "जो सत् है वह ब्रह्म है" इतनी अपेक्षा करो, जितना सांसारिक मनुष्यों की राज़ी-नाराज़ी की करते हो, तो कोई विपत्ति आपके सिर पर नहीं आ सकती। वेद कहता है "आपकी खातिर हे प्रभो! मो मन है तन बीच।" वेदों के समय कुँवारी कन्याएँ अग्नि की परिक्रमा देती हुई यह राग गाती थीं, "हम उस एक सर्वदर्शी अपने पति के साथ एक हो जाएँ, इस अपने बाप के घर (क्षणभंगुर संसार) को ऐसे छोड़ दें, जैसे दाना भूसे को। और मालिक के घर में दाखिल होकर वहाँ से

कभी न निकलें।" यही राग राम के भीतर से बराबर निकल रहा है। यह शरीर फट जाये, यह सिर टूट जाय, हृदय विदीर्ण हो जाय, परन्तु तेरे अतिरिक्त अन्य कोई विचार हृदय मे न उठे। यही राम का कहना है। जब कभी सांसारिक मित्रों, प्रियजनों तथा कुटुंबियों पर विश्वास करके वह प्रेम, जो ईश्वर के लिए होना चाहिये, आप उनसे करते हो, तो अवश्य धोखा खाओगे। मुसलमान कहते है 'ला इलाह इल्लिलाह" (एकमेवाद्वितीयम्), अर्थात् एक ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा ईश्वर नही। हजरत ईसा और श्रीबुद्ध भगवन् और हमारे ऋषियों का भी किसी न किसी रूप में यही कथन है। परन्तु यदि उस कथन का प्रत्युत्तर उनके सुननेवालों से उस समय मे और तत्पश्चात् सारी दुनिया के तत्त्वज्ञानियों से हर समय व हर बार न मिलता रहता, तो वह कथन (उपदेश) सदा कायम ही न रहता। यही कथन दैवी विधान है। यही हमारा आत्मा है। यही राम है। यही ब्रह्म है। यही सच्चा त्याग है। कोई जाति उसे छोड़ नही सकती है। यही अति कठोर है। परन्तु अमर जीवन की प्राप्ति का द्वार है। जो कोई इसके अतिरिक्त और कहीं मन लगावेगा, धोखा खावेगा, दगा उठावेगा, छोड़ा (त्यागा) जावेगा, मारा जावेगा। चाहे राम के निश्चय को भोले-भाले चित्त का अन्धविश्वास कहो, परन्तु उसने तो यह दृढ़ विश्वास कर लिया है, जिसने तत्त्व का साक्षात्कार कर लिया, वह न मृत्यु को देखता है, न रोग को। वह सबका आत्मा हुआ सब जगह मौजूद है। मेरे प्यारे! इस संसार पर विश्वास करना ही मौत (मृत्यु) है। तेरा असली आत्मा तो आनन्दस्वरूप (राम) है।

(१) देखा न शब जो यार को, नूरे-ज़िया से कार क्या ?
मुर्दों की क़ब्रे-तार को आबो गया से कार क्या ?

(२) चाहे कोई भला कहे, ख़्वाह बड़ा बुरा कहे,
पल्ला छुटा जो जिस्म से, बीमोरज़ा से कार क्या ?

(३) नेकी-बदी ख़ुशी-ग़मी, ज़ीना थी बामे-यार का,
ज़ीना जला दो अब यहाँ पाई-बया से कार क्या ?

(४) अहमके-कोर ही को है उल्फ़त मा सिवाये-हक़,
काबा-ए-दिल में यह ज़िना, बूए-वफ़ा से कार क्या ?

(५) इतना लिहाज़ कर लिया, दुनिया तेरा परे भी हट,
नाचूँ हूँ साथ राम के, शर्मो हया से कार क्या ?

भावार्थ—(१) (अज्ञान की) रात्रि में यदि अपने प्यारे को हमने नहीं देखा, तो दिन की रोशनी से हमारा क्या प्रयोजन ? अँधेरे में मृतक की समाधि पर पानी और घास से क्या प्रयोजन ?

(२) चाहे कोई भला कहे, चाहे कोई बुरा कहे, जब इस शरीर से पल्ला (मोह) छूट गया, तो भय और आशा से क्या प्रयोजन ?

(३) पुण्य-पाप और हर्ष-शोक प्यारे के कोठे पर चढ़ने (ईश्वर-प्राप्ति) का सोपान है। पर हम तो अपने प्यारे स्वरूप को प्राप्त हो चुके, इसलिये इस सोपान (सीढ़ी) को अब जला दो, हमें इन पगवाली सीढ़ियों से क्या प्रयोजन ?

(४) अन्धे पुरुष को ही ईश्वर से अतिरिक्त वस्तु के साथ प्रीति भाती है। दिल के मन्दिर में यह व्यभिचार ? ऐसी दशा में विश्वास की गन्ध से प्रयोजन क्या ?

(५) ऐ दुनिया ! तेरा इतना लिहाज़ तो कर लिया, अब परे भी हट, अब तो मैं शुद्ध स्वरूप राम के साथ नाच रहा हूँ। सांसारिक लज्जा और प्रेम से मुझे क्या प्रयोजन ?

प्यारे ! सुनो, वेदान्त केवल लफ्जी जमा-खर्च (शब्द-आडम्बर) नहीं, बल्कि यह संसार भी कोई वस्तु नहीं। जो इसे सच्चा मानता है, वही मरता है। एक आत्म-तत्त्व ही अमर है, वह ही सत् है, हाँ हाँ हाँ, वही सत् है

ॐ ! ॐ !! ॐ!!!

६

वार्तालाप

(नीचे लिखी बातचीत प्रश्नोत्तर के रूप में लालभवन, फ़ैज़ाबाद में, तारीख़ १२ सितम्बर, सन् १६०५ ई० मंगलवार को सबेरे ६ बजे श्रीरामतीर्थ भगवान् ने श्रीमान् कुंदनलाल डिप्टी-कलेक्टर, पांडेय शांतिप्रकाश, पं० शिवानंद तथा अन्य कतिपय जिज्ञासुओं की उपस्थिति में की। स्वामी राम ने इन महानुभावों के प्रश्नों के जो उत्तर दिये, उनके संक्षिप्त नोट जो श्रीमान् शांतिप्रकाश, मंत्री साधारण धर्मसभा, फ़ैज़ाबाद ने लिये थे, वे अविकल रूप से उद्धृत किये जाते हैं।)

प्रश्न—अब दिनोंदिन, जैसा कि पुराणों में लिखा है, भारतवर्ष की अवस्था ख़राब होनी चाहिये, क्या यह ठीक है ?

उत्तर—अब भारतवर्ष सँभले बिना न रहेगा। अब इसके अच्छे दिन आ रहे हैं। अधोगति की रात्रि बीती जा रही है। एक समय था, जब भारतवर्ष स्वर्गोपम कहलाता था, उसके सौभाग्य का सूर्य मध्याह्न-काल पर था। फिर दिन ढलना आरंभ हुआ। वह सूर्य मिस्र में पहुँचा। मिस्र से यूनान और रोम होता हुआ स्पेन आदि योरप के देशों में जा चमका। फिर इँगलैंड की बारी आई। और, इँगलैंड से अमेरिका जा पहुँचा, जिसने सारे संसार को चकाचौंध में डाल दिया। सो वही सौभाग्य-सूर्य आज जापान पर चमक रहा है। यही कारण है कि जापान उन्नति पर उन्नति किये चला जाता है। जापान के बाद चीन और चीन के बाद हमारा देश भारतवर्ष इस विश्वद्योतक सूर्य से

प्रकाशित होगा। कोई शक्ति नहीं, जो इसको रोक सके। There is no power human or divine that can stand in the way—कोई ऐसी शक्ति नहीं, जो इस सौभाग्य-सूर्य को इस चक्कर काटने से रोके रख सके। भगवन्! इस मुर्दापन को दूर करो और प्रफुल्लता को हृदय में स्थान दो। फिर कौन-सी ऐसी शक्ति है, जो आपको आनंद के भोगने से वंचित रख सके। आओ, और आनंद का आस्वादन करो। देखो, यह अमी-रस कैसा मीठा और प्यारा है। ॐ आनन्द! आनन्द!!

फिर पुराणों की सत्यता के विषय में स्वामीजी ने यों कहाः—

वेदों का कर्मकांड अब कहाँ रहा? वे राजसूय यज्ञ आदि अब कहाँ गये? साँप निकल गया और लकीर रह गई, और आप लोग लकीर के फकीर लकीर पीटे चले जाते हो। यज्ञोपवीत तो रह गया, मगर यज्ञ कहाँ गये? खाली शिखा रह गई, मगर वह बात कहाँ गई, जिसके लिये शिखा रक्खी जाती थी? अब तो विवाह और मृत्यु के यज्ञों का भी केवल नाम-मात्र रह गया है।

महाभारत के बाद वेदों का संस्कार नहीं रहा। पहले तो युद्ध में कितने ही योद्धा काम आये, और फिर जो कुछ बचे-खुचे क्षत्रिय रह गये थे, उनमें से बहुत-से अश्वमेध-यज्ञ की भेंट हो गये। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु मरने को जाते समय क्षत्रिय-वंश का बीज बो गया था, नहीं तो इस घरेलू लड़ाई ने क्षत्रियों का बीज ही संसार से नाश कर दिया था। हाँ, इन क्षत्रियों के बाद भारतवर्ष में खत्री आ गये, कायस्थ आ गये—मगर भाइयो! बुरा न मानना, वे (मूल) क्षत्रिय ही नहीं रहे। इस महान् युद्ध के अन्त होने पर स्त्रियाँ-ही-स्त्रियाँ रह गईं; अब बिना पुरुषों के वे कर्मकांड कैसे करें? यह दशा तो क्षत्रियों की थी, बेचारे

कहते हैं, समष्टि रूप से उसी का नाम देवता है। उपनिषद् और तैत्तिरीय ब्राह्मण में सिवाय इंद्रियों के देवता का और कुछ अर्थ नहीं है। देवताओं ने पहले गौ के शरीर में प्रवेश किया, फिर घोड़े के, अन्त में मनुष्य के शरीर में। पैरों का देवता विष्णु है जो पैरों में रहता है, इसी से चरण धोने का काम, राजसूय यज्ञ में, श्रीकृष्ण को दिया गया था। ३३ कोटि देवताओं से ३३ करोड़ देवतों कर अभिप्राय नहीं है, जैसा कि सर्व-साधारण समझते हैं, वरन् 'कोटि' के अर्थ 'प्रकार' के❀ है इसलिये ३३ कोटि से प्रयोजन ३३ प्रकार के देवताओं से है। यह सीधी-सादी बात थी, मगर टेढ़ी हो गई। व्याकरण और ज्योतिष ही से सब बातें सिद्ध नहीं होतीं।

जर्मन-भाषा राम ने आठ दिनों में सीखी। जिस जहाज़ में राम अमेरिका गया था, उसमें पाँच-छः सौ जर्मन लोग थे। राम अपने कमरे (कैबिन) से बाहर आकर बहुधा जहाज़ के डेक पर घूमा करता था। मगर वहाँ से कुछ जर्मन लोग उसको अपने कमरों में ले आया करते थे, और उससे बातचीत करते थे। राम ने जर्मनी ज़बान इसी तरह आठ दिन में सीख ली, जैसे बच्चा कोई भाषा सीखता है। इसी तरह संस्कृत के सीखने के लिये व्याकरण और कोष में सारी आयु नष्ट न करो। पुस्तकें पढ़ना आरंभ कर दो। केवल रटंत से समझ नहीं खुलेगी। महाराज ! यह तो बताओ कि 'निरभौ' भी कोई शब्द है ? पर हाँ, गुरु नानकजी के कारण गुरुमुखी-भाषा में यह एक उत्तम

❀ स्वामीजी का अभिप्राय यहाँ उन मुख्य ३३ देवताओं से है, जिनका उपनिषदों में ऐसा वर्णन है:—(क) आठ वसु (ख) ग्यारह रुद्र (ग) बारह आदित्य (घ) एक इंद्र और (ङ) एक प्रजापति।

शब्द हो गया है। गुरु नानकजी के कारण गुरुमुखी एक भाषा हो गई—साहित्य बन गया। प्यारो! आप कविता के अनुप्रास (क़ाफ़िया) रदीफ़ और बहरें पड़े मिलाया करो; पर जो वाक्य आत्मनिष्ठ पुरुषों से निकलते हैं, वहाँ इनकी क्या आवश्यकता। कविता की भूमि से उठकर कविता के आकाश पर आओ। गुरु नानक की कविता को देखो, उसमें कहाँ अनुप्रास और कहाँ छंद? मगर एक पारलौकिक कविता होने के कारण उसने जो गौरव पाया है, वह सूर्य की तरह प्रकाशित है। छंदःशास्त्र के विचार से गीता भी त्रुटियों से रहित नहीं है, तथापि उसको ईश्वरीय गान अर्थात् भगवद्गीता कहते हैं। इसका प्रकाश युगों के परदों को भेदकर आज तक बराबर छनता चला आता है। उपनिषदों में भी व्याकरण के नियम भंग किये गये। व्याकरण बदल दो। जीवात्मा के साथ शरीर चलता है, न कि शरीर के साथ जीवात्मा।

स्मरण रहे कि वेदों की आत्मा (जान) सत्-ज्ञान है। उसको नहीं बदला; वेदों के केवल शरीर अर्थात् कर्मकांड को बदल दिया। आत्मा नहीं बदल सकता है, शरीर ही बदला करते हैं। कई जगह यही घटित होता है। स्वामी दयानंद सरस्वती से पहले भी वेदों का ज्ञान तो मौजूद था, हाँ, वेदों के कर्मकांड का बेशक प्रचार न था। उपनिषद् थे और चाव से पढ़े जाते थे। संहिता छपी हुई मौजूद न थी और न सामान्य रूप से किसी के पढ़ने में आई थी। वर्तमान संहिता के प्रकाशन का इतिहास इस तरह है कि जब ईस्ट-इंडिया-कंपनी भारतवर्ष में आई, तब अँगरेजों ने वेदों की संहिता को इकट्ठा करना शुरू कर दिया—किसी एक पुस्तक वा घर से नहीं, वरन् अनेक ब्राह्मण-घरानों से। क्योंकि प्रत्येक ब्राह्मण-घराने में कोई-न-कोई वेद की शाखा

मौजूद थी। कोई-सी एक शाखा पढ़ लो, बाक़ी सब वही हैं। अग्नि आदि का ज़िक्र सभी में तो आ जाता है। विष्णु केवल एक स्थान पर आया है। बात वही है, भेद केवल शब्दों का है। जैनियों और बौद्धों के मत से ब्राह्मणों का धर्म गया। ब्राह्मणों के मारे जाने से उनकी शाखा लुप्त हो गई। निदान जो कुछ शाखायें मिलीं, उनको ईस्ट-इंडिया-कम्पनी ने इकट्ठा कराया और प्रोफ़ेसर मैक्समूलर ने यथानियम संपादित किया। फिर वे पुस्तक के आकार में छपीं। स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने उन वेदों को पढ़ा। यद्यपि पुराणों में वेदों की आत्मा स्थित रक्खी गई है, मगर बौद्ध-धर्म का प्रभाव कहीं-कहीं रह गया। बुद्ध का मुख्य मत शुद्ध उपनिषदों से निकला है। उनके शिष्यों ने बौद्ध-धर्म की मट्टी पलीद की। बौद्ध मत तो क्या, वरन् चार्वाक-मत भी उपनिषदों से निकला है। चार्वाकों का मत वेदों से सिद्ध होता है। सारांश यह है कि वेद तो मोम की नाक है, सच्चाई तो हमारे भीतर होनी चाहिये। रामानुज, माधवाचार्य आदि सभी तो अपने-अपने मत को वेदों से सिद्ध करते हैं। यह सब इसी प्रकार है, जैसे एक मुसलमान पियक्कड़ (शराबी) ने क़ुरान से शराब पीना सिद्ध कर दिया। बात क्या थी कि कुरान में कहीं आया है कि "खाओ तुम कबाब और पियो तुम शराब, जाओगे तुम जहन्नुम को।" इसका अंतिम वाक्यांश उड़ाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर लिया। इसी तरह वेदों से सब लोग अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं। सत्य तो यों है कि उपनिषदों से शंकराचार्य का मत निकलता है। रामानुजजी का काम सामाजिक सुधार का था, जो हरएक को अवश्य स्वीकार करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य सब वस्तुओं को नहीं जानता। स्वामी दयानंदजी बड़े व्याकरणी थे चूँकि व्याकरण, कोष,

काव्य और वेदों की संहिताओं को जानते थे, मगर वह तत्त्व-ज्ञान में अधिक जानकारी न रखते थे। अद्वैत के विरुद्ध जो कुछ उन्होंने कहा है, वह रामानुज और माधवाचार्य से लिया है और मूर्ति-पूजन के विरुद्ध जो कुछ कहा है, वह मुसलमानों और ईसाइयों से लिया है। स्वामी दयानंदजी में कोई नई बात नहीं थी। जो कुछ कहा है, औरों से लिया है। इस पर पंडित शिवानंदजी ने प्रश्न किया कि यदि खंडनात्मक भाग दयानंद-मत से निकाल दिया जाय, तो बाक़ी कुछ न रहेगा ?

स्वामीजी ने उत्तर दिया—भगवन् ! ऐसा मत कहो। उसमें बहुत कुछ ग्रहण करने योग्य शेष रह जाता है। स्वामी दयानंद के खंडन और गाली-गलौज को छोड़कर आप उनके जोश-ख़रोश और निर्भयता को क्यों नहीं लेते ? आपको चाहिये कि हंस की तरह दूध को पी लो और पानी को छोड़ दो। जहाँ कहीं अच्छी बात मिले—चाहे दयानंदजी से मिले, चाहे मोहम्मद साहब से, चाहे मूसा से, चाहे ईसा से—उसे आप तत्काल ग्रहण कर लो। प्रायः लोग गुण की ओर दृष्टि नहीं देते, दोषों को ही देखा करते हैं। इस प्रकार के भद्दे कटाक्ष (Sweeping remarks) करना छोड़ा दो, और युक्ति का परित्याग मत करो।

बुद्ध ने वेदों के ज्ञान-कांड को ले लिया ; मगर पुराणों ने वेदों के कर्म-कांड को भी नहीं छोड़ा। बुद्ध के बाद उनके मत के चार संप्रदाय भारतवर्ष में हो गये और वे सब जापान के उत्तरीय और दक्षिणीय भाग में हैं। बुद्ध भगवान् का जीवन अत्यंत पवित्र था। बुद्ध भगवान् ने वर्णाश्रम को बिल्कुल उड़ा दिया। कुछ तो आर्य्य लोग और कुछ यहाँ के मूल-निवासी शैल, भील, गोंड आदि कुछ दिनों बाद सर्पों, नदियों और पत्थरों की पूजा करने लगे। भंगी लोग लूत पैग़ंबर की संतति से हैं, जिनका

उल्लेख बाइबिल में है। राम ने, अर्सा हुआ, इस विषय का अध्ययन किया था।

वाम-मार्ग (तंत्रिज्म) बौद्धों में फैल गया, और अब भी अमेरिका, चीन और जापान में तांत्रिक लोग मौजूद हैं। बौद्ध-मत के पश्चात् कुमारिल भट्ट ने वेदों का प्रकाश किया। मंडन मिश्र कुमारिल भट्ट का शिष्य था, किंतु जिसने वेदों की आत्मा अर्थात् ज्ञान-कांड का प्रकाश किया, वह शंकर था। भारतवर्ष क्या, सारे संसार में यह सबसे महान् पुरुष हुआ है। राम और कृष्ण की बात दूर गई, किंतु वर्तमान काल में शंकर से बढ़कर दूसरा मनुष्य जगत् में उत्पन्न नहीं हुआ। उसने द्वारकाजी से जगन्नाथजी अर्थात् अटक से कटक तक पैदल कई भ्रमण किया। कन्याकुमारी अंतरीप से बद्रीनाथ तक उसने पृथ्वी को नापा। शंकराचार्य के तत्त्वज्ञान ने योरप के तत्त्वज्ञान में जीवन डाल दिया। जर्मन तत्त्ववेत्ता कैंट (Kant) आदि ने इसके ग्रन्थों का अध्ययन किया था। अब ऐसे ही जाग्रदात्मा पुरुष, जो परमात्मा के अस्तित्व के आगे जगत् के अस्तित्व तक को कुछ नहीं मानते, दूसरों को जगा सकते हैं, नहीं तो—

"खुफ़्ता रा खुफ़्ता कै कुनद बेदार" अर्थात् "सोते को सोता भला क्योंकर जगा सके।"

इस महापुरुष शंकर ने भारतवर्ष को जगा दिया। ओ हो! इसने भारतवर्ष में सजीव मेधा शक्तियाँ उत्पन्न कर दीं, उसने दस प्रकार के संन्यासी बना दिये, और प्रत्येक का एक-एक नाम रख दिया। चार मठ स्थापित कर दिए। यह दशनामी संन्यासी उन मठों में रहकर ईश्वरीय शिक्षा का संग्रह करते थे।

"Great men are always found in caves"—
"महान् पुरुष सदैव कंदराओं में पाए जाते हैं।"

ज्योतिर्मठ, शारदामठ, शृंगेरीमठ, गोवर्धनमठ सब इन्हीं के स्थापित किए हुए हैं। राम भी द्वारका के शारदा मठ से संबंध रखता है।

जब नीच जातियाँ बौद्ध बन गईं, तो कुछ दिनों बाद वाम-मार्ग आदि के रूप में प्रकट होकर अत्याचार करने लगीं। इस महापुरुष शंकर ने इन अत्याचारों को दूर किया, और शंकराचार्य के पश्चात् हिंदू-धर्म फैल गया। पिता तो है आर्य्य-धर्म और माता है बौद्ध-धर्म।

इँगलैंड में Hood (एक प्रकार का टोप) और Gown (साफ़ा) अभी तक ग्रैजुएट को दिया जाता है। ये क्या हैं? फ़क़ीरों के जुब्बा (एक तरह का लम्बा बेबाहों का कुर्ता) और कासा (कटोरा) की नक़ल है। जिस तरह knight (शूरवीर) बनने से पहले page (सेवक) होना पड़ता है, उसी तरह से पहले ब्रह्मचर्य, फिर संन्यास। संन्यास देने का अधिकार गुरु को उस समय तक नहीं है, जब तक संन्यास की वृत्ति भीतर से फूट-फूटकर बाहर न निकल आवे। इसी प्रकार से ये संन्यासी बनाए गए थे। ये चलती-फिरती युनिवर्सिटियाँ थीं। श्रीशंकराचार्य के कारण हिन्दू-धर्म फैल गया। अब नामों की सनदों से काम होने लगा। लोग तो लेबुलों के मातहत काम करते हैं। अगर एक आर्य्य-समाजी ने कोई बुरा काम किया, तो क्या सब आर्य्य-समाजी बुरे हो गए? इस तरह के भद्दे विचारों को छोड़ दो। शंकराचार्य के बाद पुराने फल उड़ गये, नये फल आ गए। शंकर के बाद बहुत-सी ऐसी पुस्तकें लिखी गईं, जिनमें तन्त्रवाद आदि का सब उल्लेख है।

जिस प्रकार वेदों के कर्मकांड को बदल दिया, उसी प्रकार अब पुराणों के कर्मकांड को बदल दो। जिस तरह गरमी आने

पर जाड़े के गरम कपड़ों को आप बदल देते हो, उसी तरह अब भी उपस्थित वर्तमान समय के अनुसार पौराणिक कर्मकांड को बदल दो, मगर पुरानी वैदिक आत्मा को स्थिर रक्खो, अर्थात् श्रुति को रख लो—

"मन ज़े क़ुरआन मग़्ज़ रा बर्दाश्तम ;
उस्तख़्वाँ रा पेशे-सगाँ अंदाख़्तम ।"

अर्थात्— मैंने क़ुरान से गुद्दे (मग़्ज़) को निकाल लिया है, और उसका छिलका (हड्डियाँ) कुत्तों के आगे डाल दिया है। अगर राम कोई चीज़ कहता है, तो इस वजह से नहीं कहता कि अमुक पुरुष ने कहा है, या अमुक ग्रन्थ में लिखा है, वरन् इसी हेतु से कहता है कि हमको इसकी आज अत्यंत आवश्यकता है।

बाबू जयदयालजी ने प्रश्न किया—महाराज ! शाक्त-मत कैसा है ?

स्वामीजी ने उत्तर दिया— जिस शाक्त-मत ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस को पैदा कर दिया, उसको कौन बुरा कह सकता है ? ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

जिस वस्तु की चर्चा करते हुए आप नीचे गिरते हो, उसे उड़ा दो।

बाबू कुन्दनलाल ने प्रश्न किया—महाराज ! हमको किस बात का अभ्यास करना चाहिए ?

उत्तर—जो पढ़ते हैं. उसी का अभ्यास करना चाहिये। यही सत्यता है। जिसका मन और वाणी एक है, वही उन्नति कर सकता है।

बच्चा मा का दूध पीते-पीते (अपना काम करते हुए) दाँत निकाल लेगा। इसी तरह हम लोग अपने कोमल-से-कोमल धर्म पर चलते हुए 'दासोऽहम्' से 'शिवोऽहम्' पर पहुँच जाते हैं।

जो पलड़ा भारी हो, उसी ओर भार का केन्द्र (Centre of gravity) होगा। यदि आपका संसारी पलड़ा भारी है, तो बंदा (दास) ही रहोगे। मंज़िलें अनेक हैं।

(१) 'तस्यैवाहम्'=मैं उसी का हूँ। वह कहीं अलग दूर है, अन्य पुरुष (3rd person) है।

(२) 'तवैवाहम्'=मैं तेरा हूँ। तू सामने मौजूद है, मध्यम पुरुष (2nd person) है।

(३) 'त्वमेवाहम्' = मैं तू ही हूँ। जुदाई दूर। उत्तम पुरुष (1st person)। मनुष्यों और जातियों को इन्हीं मंज़िलों में से होकर गुज़रना पड़ता है। राम ने भी इन मंज़िलों को पार किया है। बच्चा गोद में रहते-रहते और दूध पीते-पीते कहता है कि मैं बाहर खेलने जाता हूँ।

धर्म वह है, जो भीतर से स्वतः निकले; न कि वह जो बाहर से भीतर ठूँसा जाये। सूर्य चमकता है कि चीज़ें उत्पन्न हों। नक़ल से काम नहीं निकलता। सवार बुद्धिमान् पशु (Rational animal) है, घोड़ा बिल्कुल पशु है। घोड़े को सवार की रानों के नीचे से मत खींचो। जब्र से काम नहीं चलता, प्रेम से चलता है।

(१) जिसकी स्थिति "दासोऽहम्" पर है, वह उसी प्रकार की पुस्तकों को पढ़े, जैसे इंजील, भक्तमाल, भागवत, पुराण आदि। इसी से उस मनुष्य को ढाढ़स होगा। मनोविज्ञान (Psychology) अर्थात् अन्तःकरण शास्त्र को पढ़ने से बड़ा लाभ होता है।

(२) जिस की स्थिति 'तवैवाहम्' में है। अर्थात् मैं तेरा हूँ, उसको विनयपत्रिका, सूरश्यामवाले पद, गीतगोविंद, नारद के भक्तिसूत्र और कई प्रकार के भजन, रामायण के कोई-कोई अंश, जैसे रामयण का वह अंश, जहाँ राम वन जाते समय लक्ष्मण और सीता से विलग होते हैं, पढ़ना चाहिए।

(३) तीसरी श्रेणीवालों अर्थात् 'त्वमेवाहम्' की स्थितिवालों के लिये बुल्लाशाह और गोपालसिंह की वाणियों के पढ़ने से भी बड़ा लाभ होता है। ये दो पंजाबी हैं। मगर गोपालसिंह की वाणी ने अभी अधिक प्रसिद्धि नहीं पाई है। इन वाणियों को पढ़ते पढ़ते मारे प्रेम के आँखें बंद हो जाती हैं। गुरु ग्रंथसाहब में दोनों श्रेणी की अपार वाणियाँ हैं, तीसरी श्रेणी की बहुत कम। पाठ करते हुए जहाँ देखा कि चित्त एकाग्र हो गया, किताब को छोड़ दो। घोड़े पर आप सवार हो, न कि घोड़ा आप पर सवार हो। पाठ किसके लिये है? भीतर के आनंद के लिये। लोग पढ़ते हैं, मगर पागुर (जुगाली) नहीं करते। अगर आप पागुर न करोगे, तो मानसिक अजीर्ण (Mental dyspepsia) हो जायगा। राम जब योगवासिष्ठ पढ़ता था, तो उसका नियम था कि उसने थोड़ा-सा पढ़ा और फिर किताब को बन्द कर दिया और उसका मनन करना आरंभ कर दिया। यदि इसी तरह से पढ़ा जाय तो क्या बात है, जो भीतर घर न कर ले। मनसरोग-शास्त्री लोग (Pathologist) यह दिखलाते हैं कि जब हम बुद्धि की सीमा (level) को छोड़कर निष्ठा की सीमी (level) को जाते हैं, तो अच्छे हो जाने के समान बन जाते हैं।

यदि आप चाहते हैं कि अद्वैत या वेदांत को हम पढ़ें, तो पहले बौद्धिक संशय और फिर निर्णायक संशय दोनों को उड़ा देना चाहिये। बुद्धि-विषयक संशय को दूर करने के लिये राम एक पुस्तक* लिखेगा, और यह किताब उस समय लिखी जायगी, जब राम दो वर्ष एकांत में रहेगा। निर्णायक संशय भी फिर

---

* शोक है कि बिना उक्त पुस्तक लिखे राम हमको छोड़कर चल दिये, जिससे यह पुस्तक प्रकाशित न हो सकी।

उड़ जायगा। इन संशयों को दूर करने के लिये उपनिषदों, भगवद्गीता और शंकर के शारीरिक भाष्य को पढ़िये। रिसाला+ अलिफ़, ×थंडरिंग डान (नून) आदि भी इसी प्रकार के रिसाले हैं। छांदोग्योपनिषद् के पाठ से राम का मन तीसरी श्रेणी पर आया। जिस समय राम दूसरी श्रेणी में था, तो वाल्मीकि रामायण के उस भाग को, जहाँ राम को वनवास हुआ है, प्रायः पढ़ा करता और रोया करता था।

राम का मन एक बार बिगड़ गया। लाहौर में अपने कोठे पर चढ़ा था। वहाँ से उसने किसी स्त्री को नग्न देखा, जिससे उसका मन बिगड़ा। मगर मन की इस अवस्था को देखकर वह तत्काल छाती कूटने और रोने लगा, और उस दिन से इस बात का पक्का इरादा कर लिया कि या तो हम मरेंगे या मन को मारेंगे। राम बचपन में बड़ा हठी था। जिस बात के करने की हठ करता था, उसको करके छोड़ता था। गणित के प्रश्न हल करने लगा, तो उसमें जी-जान से लग गया, खाना-पीना, खेलना-कूदना सब बंद। एक बार ऐसा हुआ कि कुछ प्रश्न उसने हल करने का इरादा किया। रात-भर हल करता रहा, मगर सब सवाल हल न हुए। बस, सवेरा होते ही कोठे पर चढ़ गया, और ऊपर से गिरकर मरने लगा। मगर ख़याल आया कि मरूँ तो क्योंकर? सवाल तो अभी पूरे हल नहीं

+ यह रिसाला स्वामी राम ने उर्दू-भाषा में निकाला था, जब कि वह गृहस्थाश्रम में थे। इसका संग्रह कुल्याते-राम के नाम से छप चुका है।

× यह अँगरेज़ी मासिक पत्रिका स्वामी राम की आज्ञा से उनके परम भक्त मि० पूर्णसिंह निकालते थे।

हुए। तात्पर्य यह कि इसी प्रकार से प्रायः हठ किया करता था। और यही हठ बाद को दृढ़ता के रूप में परिवर्तित हो गया। संन्यास लेने से प्रथम राम एक बार कश्मीर को चला गया था। फिर वहाँ से आकर कुछ दिन घर पर रहा। मगर बकरे की मा कब तक खैर मनाएगी, दूसरी बार फिर निकल पड़ा। वर्ग (क्लास) में जब पढ़ाता था, तब प्रायः गणित-शास्त्र का व्याख्यान भक्ति के विषय में परिणत हो जाता था। अंत में उसको सांसारिक संबंध छोड़ने ही पड़े। हरिद्वार में पहुँचा। हरिद्वार से हृषिकेश के मार्ग से सत्यनारायण के मन्दिर पर पहुँचा। अपने रेशमी वस्त्र और सोने की जंजीर और घड़ी आदि सब इधर-उधर फेंक दिये। तीन सौ रुपये घर से और मँगवाये। वह भी खर्च कर डाले। फ़क़ीरों, साधुओं से मिला। वार्तालाप हुई। सबसे शास्त्रार्थ हुए। तब राम ने यह देखा कि ज़बानी ज्ञान छाँटने में किसी से कम नहीं हूँ। मगर हाय! शांति फिर भी नहीं है। अब इस शांति की खोज में घूमता फिरता है। एक दिन प्रातःकाल सत्यनारायण के मंदिर से जहाँ वह ठहरा था, सब साथियों को छोड़कर अकेला भाग निकला। मगर एक संस्कृत का विद्यार्थी उसके साथ हो लिया, क्योंकि संस्कृत के विद्यार्थी प्रायः बड़े सवेरे उठते हैं। संयोग से एक मस्त अद्वैत मूर्ति महात्मा से इसकी आँखें दो-चार हुईं। उनके पास केवल एक लँगोटी थी और कुछ न था। वह लँगोटी भी कुछ फटी हुई थी। एक सेठ बदरीनाथ को जा रहा था। इस मस्त महात्मा ने उस सेठ से अपनी लँगोटी की ओर, जो कुछ खुली थी, संकेत करके कहा—"अरे! बदरीनाथ तू यह देख ले।" इन महात्मा का नाम बद्रीदेव था। इनसे जब राम की आँखें दो-चार हुईं; दोनों हँस पड़े। वार्त्तालाप हुई। दशा पलट गई। वहाँ से

पहाड़ पर चला, जहाँ जंगल के किनारे एक ब्रह्म-पुरी नाम का अरण्य है। राम ने वहाँ उपनिषदों को पढ़ा। छांदोग्य उपनिषद् शांकर भाष्य सहित पढ़ा जा रहा था। फिर तो ऐसी समाधि लगी कि कुछ न पूछो। अगर राम चट्टान पर लेटा है, तो कोई पत्थर का टुकड़ा पड़ा है। अगर धूप में बैठा है, तो खुद धूप हो रहा है। ऐसी दशा में वह लड़का भी, जो राम के साथ हरिद्वार से भाग निकला था, राम से अलग रहता था। कभी नीचे से कुछ लाकर राम को खिला जाया करता था। उस समय राम की ऐसी दशा हो गई कि यदि वह वायु को आज्ञा दे कि चल, तो वायु तत्काल चल पड़ती थी। पंचमहाभूत उसकी आज्ञा का पालन करते थे। यदि उसको किसी ग्रन्थ की आवश्यकता होती थी, तो कोई व्यक्ति वही किताब लिए उसके पास चला आता है। तात्पर्य यह कि यह अवस्था निरंतर छः महीने तक रही और यह स्थिति केवल इसी प्रकार के मनुष्य की नहीं हो सकती, वरन् प्रत्येक व्यक्ति को यह स्थिति प्राप्त हो सकती है। जब अनुभव प्रत्यक्ष होता जाय, तब तर्क और दलीलों को उड़ाते जाओ। जो पुस्तक आपके चित्त पर प्रभाव डाले, साथ रख लो। मगर जब वह वस्तु भी मिल जाय, तो पुस्तक को भी फेंक दो।

(१) पहली चोट (क) पहला साधन—पढ़ना गुली-डंडे की पहली चोट है। फिर दूसरी चोट अभ्यास की है। पहला दर्जा पाठ दूसरा दर्जा जप।

(ख) दूसरा साधन—अभ्यास, संयम और आकर्षण से अपने शरीरों को उड़ा ले जाओ। क्यों न हम प्रकृति के दृश्य से आकाश तक उड़ते चले जायँ। प्रातःकाल के समय नदियों, और बाग़ों में सूर्य के सामने आ जायँ कि जिससे मन उच्च हो।

महात्माओं के सत्संग से भी मन महान् हो जाता है। यह गुली-डंडे की पहली चोट है।

(२) दूसरी चोट—"चुनाँ पुर शुद फ़िज़ाए-सीना अज़ दोस्त ;
ख़याले ख़्वेश गुम शुद अज़ ज़मीरम।"

अर्थात् मेरे हृदय की भूमि मेरे मित्र से ऐसी भरी हुई है कि मेरे दिल से अपने अस्तित्व का ज्ञान ही नष्ट हो गया। वातावरण (atmosphere) में जब भराव (saturation) आ जाता है, तब किताब को उठाकर ताक़ में रख दो। जब छैल-छबीले की मूर्ति से आँख लड़ी, तब ज्योति में ज्योति समा गई। जब इन मनोहर दृश्यों से चित्त में उमंग भर आवे, तब ओ३म्, ओ३म् का गाना शुरू कर दो। यह ओ३म् का गाना ब्रह्मांड का संगीत अर्थात् ब्रह्मध्वनि (Music of the) Sphere) है। जिसको महात्माओं ने सुना है, और सुनाते हैं, और जो सुनना चाहे, वह सुन सकता है—

नग़मे सुरीले ओ३म् के हैं इससे आ रहे ;
नदियाँ परिंदे याद में हैं सुर मिला रहे।

(३) अनुराग को न कुचलो। ऐसे अनुराग को रोक देना मानो महात्मा यूसुफ़ को कुएँ में डाल देना है। जब वह दशा आ जाय, तो उसको स्थिर रक्खो। कृष्ण की वंशी का नाद सुनकर गोपियाँ बिहाल हो जाया करती थीं। इस आंतरिक राग के सामने प्रत्येक वस्तु को न्यौछावर कर दो। क्योंकि ईश्वर भीतर बैठा है। संसार का काम कभी नहीं बिगड़ेगा। इस अवसर पर यदि आपसे कुछ पद निकलें, तो निकलने दो। अन्तर्ध्वनि के अनुसार चलो, तो आनंदमग्न होगे, अन्यथा नष्ट हो जाओगे। वेदांत-शास्त्र (आत्मज्ञान) के व्याख्यान पढ़ने से एकांत में अधिक सुख होता है।

साँस साँस पर सुमिरो हरि नाम। जिह्वा से नाम लेने पर मन पर भी प्रभाव पड़ता है। जप—(१) वाणी से, (२) मन से, (३) संपूर्ण शरीर से होना चाहिये। नाम की महिमा अद्भुत है।

ओ३म् केवल वेद में नहीं, क़ुरान में भी मौजूद है—

अलिफ़ + लाम + मीम=उम=ओ३म्

क़ुरान की बहुतेरी आयतों के आरंभ में (अ, ल, म) जो आया है, वह यह ओ३म् ही है। (अल) जो प्रायः शब्दों के आरंभ में आता है, उसका लकार 'पेश' अर्थात् उकार में परिवर्तित हो जाता है, जैसे करीम-उल-दीन पढ़ने में' करीमुद्दीन हो जाता है। और 'पेश' अर्थात् ह्रस्व उकार 'वाव अर्थात् वकार का संक्षिप्त रूप है। अतएव क़ुरान का अ + ल + म=अ + उ + म =ॐ के समान है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

———